सत्यका सैनिक

श्रीनारायणप्रसाद 'बिन्दु'

श्रीअरविन्द-सर्किल
३२ रैम्पर्ट रो, फोर्ट,
बम्बई

दो शब्द

जो आत्माके रहस्योको, अतर्जगत्की समस्याओको, नही मानते उनके लिये इस नाटकके इन प्रसगोको स्वप्नलोककी रगरलिया कह-कर उडा देना अधिक सभव है, पर जो लोग इनकी वास्तविकताको स्वीकार करते है वे जानते है कि हम कितने कम अशमे स्वतत्र है–किस भाति हमारा जीवन आलोक और अधकारका रणस्थल बना हुआ है। कब कौनसी शक्तिद्वारा हम कैसे परिचालित होते है इसका एक चित्र उपस्थित करनेके उद्देश्यसे ही हमने सूक्ष्म शक्तियोको स्थूल-की भाति स्टेजपर उतारा है।

सैनिकके जीवनमें आपको केवल युद्धकी कहानी मिलेगी, जिनके जीवनमे कोई सघर्ष नही वे साधक नही, सिद्ध है। हमारा प्रयास एक ऐसे दुर्बलचित्त साधकके जीवनकी कुछ समस्याओको सामने रखना है जिसने साधन-भूमिमें रेग-रेगकर चलना सीखा है, ईंट-ईंट जोडकर महल खडा किया है।

श्रीअरविंद आश्रम
पाडीचेरी

विनीत–
'विंदु'

प्रकाशककी ओरसे:—

प्रस्तुत पुस्तक क्यो मै आपके समक्ष रखने जा रहा हू, इस सबधमे थोडा-सा निवेदन कर दू।

जब यह नाटक 'सात्विक जीवन'मे धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हो रहा था, तभी मेरी दृष्टि इसपर पडी और मुझे आभास हुआ कि यदि इस नाटकका फिल्मीकरण किसी दिन सभव हो सके तो इसकी श्रेष्ठता और महत्ताका प्रसाद जन-साधारणको सुलभ और सुगम हो। तब इसका नाम था 'सत्यव्रत' और यह घटना है सन् १९४३ की।

तबसे अबतक इसके प्रति मेरा आकर्षण एक-सा रहा पर किसी-न-किसी कारणवश इसका प्रकाशन सभव नही हो सका। आज इसे 'सत्यका सैनिक' नामसे हिन्दी-जगतके सम्मुख रखते हुए मुझे बडी प्रसन्नता हो रही है।

हिंदी-जगत्मे तो नाटकोका अभाव है ही पर इस तरहके आध्यात्मिक नाटकोका तो और भी! सर्व-साधारणका विश्वास है कि शृगार अथवा वीररस-परिपूर्ण गार्हस्थ्य जीवनकी कुछ समस्याओके सिवा नाटककी सामग्री और क्या हो सकती है, पर यह नाटक उस श्रेणीका नही है। इसकी एक नयी सृष्टि है, इसमे एक नयी दृष्टि है।

जो कलाकार अपनी रचनामे मानव-मनके घात-प्रतिघातोको, द्वद्वोको, चित्रित कर सकता है, वही उसकी प्रशसनीय कृति कही जा सकती है। आनदकी बात है कि इन घात-प्रतिघातोको जिस

खूबीसे थोडेसे शब्दोमे नाटककारने इसमे प्रदर्शित करनेकी चेष्टा की है, वह समझानेकी नही—आख मूदकर हृदयकी हरेक तहमे अनुभव करनेकी चीज है।

इस नाटकके दो गानोका अनुवाद बगला और अग्रेजीके सुप्रसिद्ध कवि, लेखक तथा लब्धप्रतिष्ठ सगीतज्ञ श्रीदिलीपकुमार रायद्वारा अग्रेजीमे हुआ था। उनमेंसे एक 'The Divine Warrior" शीर्षकसे अग्रेजीके 'त्रिवेणी' पत्रके सितम्बर (१९४३) अकमे प्रकाशित हुआ था। उन्हे मैं परिशिष्टमे दे रहा हू।

विनीत—

केशवदेव पोद्दार

नाटकके पात्र

पुरुष

विजय–एक धनाढच युवक, बादमें सत्यव्रत

प्रमोद–विजयका बाल-मित्र, बादमें भानुदास

गोवर्धन–प्रमोदका मित्र, बादमें घोरानद

भवेश–एक बेकार ग्रेजुएट, पीछे विजयकी स्टेटका मैनेजर

दामोदर–विजयके यहा आने जानेवाले एक धार्मिक पडित

प्रज्ञानाथ–सत्यव्रतके गुरु

देवव्रत–प्रज्ञानाथका बडा शिष्य

ज्ञानदेव–सत्यव्रतका गुरुभाई

सोमदत्त– ,, ,,

उत्तमदास–भानुदासका गुरुभाई

गोपालदास– ,, ,

स्त्री

अंजलि–विजयकी पत्नी

भामा–गोवर्धनकी पत्नी

रजनी–एक बाल विधवा

सत्यका सैनिक

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—मायाका राजमंदिर

(तेज और द्युतिसे देदीप्यमान, अग्निके रगमें रगे वस्त्रसे आच्छादित ऋषिकुमार सत्त्व कुछ पतग-साधकोंके साथ प्रवेश करता है। उसके प्रवेश करते ही रगमच आलोकसे उद्भासित हो उठता है। पतग-साधक मुनि-बालकोंके वेशमे है, उनके स्कधपर अबरकके पख लगे हैं। वे सत्त्वको घेरकर नाचते गाते है।)

हम प्रकाशके हैं परवाने।

मखवेदी बलि होने आये,
लौपर जीते जलने आये,
पूर्व मौतके मरने आये,
आये जगको हम सिखलाने
मरते कैसे लगन दिवाने।
हम प्रकाशके हैं परवाने॥

जीवनभर जागते रहेंगे,

जीवनभर ताकते रहेंगे,

जीवनभर साधते रहेंगे,

आये कुछ करके दिखलाने

अथवा अग जगसे मिट जाने।

हम प्रकाशके हैं परवाने॥

ओस-कना पी खड़े रहेंगे,

दरवाजे पर पड़े रहेंगे,

साधन रणमें अड़े रहेंगे,

आये दर हम नहीं पटाने

बिना मूल्यके बस बिक जाने।

हम प्रकाशके हैं परवाने॥

सत्त्व—अहा! यह भाव यदि मैं मनुष्यमें भर सकता! अच्छा, बालको! तुम लोग जाओ।

(बालकोका प्रस्थान)

(लाल रगके रेशमी वस्त्रसे विभूषित, किशोरवयस् खिले गुलाबसे आननवाले रजका प्रवेश। उसका रोम-रोम जीवन और रूपकी ज्वालासे सुलग रहा है। उसके प्रवेश करते ही स्टेज लोहित वर्णका हो जाता है।)

सत्त्व–आओ रज ! (हाथ पकडकर) एक बात कहू, बुरे तो नहीं मानोगे ?

रज–न जाने क्यो तुम्हारी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

सत्त्व–(कुछ सोचकर) अच्छा कही डालू। मानो या न मानो। तुममें एक बुरी आदत यह है कि तुम जो कुछ सामने देखते हो बस उसीके पीछे 'यही लक्ष्य है, यही लक्ष्य है' कहकर अपनी मोटर दौडा देते हो; जरा नहीं सोचते कहां गिरोगे, कहा धक्के खाओगे।

रज–(आगबबूला होकर) मेरी सब आदतें बुरी हैं, हुआ करें। तुम्हे मतलब ?

सत्त्व–(आगमे पानी डालते हुए) प्रिय रज ! यदि तुम मेरे रथमें आकर बैठ जाओ तो मेरे रथका घोड़ा तुम्हे ऐसे सुपथसे ले जाय कि न तुम्हें गड्ढेमें गिरनेका डर रहे, न तमसे आक्रात होनेकी आशका।

रज–ना, मै किसीकी अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता।

सत्त्व–क्यों ?

रज–'क्यो' पूछनेवाले तुम कौन ?

सत्त्व–हठ मत करो रज !

रज–तुम, तमसे कहो, वह तुम्हारा कहा मान लेगा।

सत्त्व–ना–इससे बडा अनर्थ होगा। लोग पड़े रहेंगे तमकी कब्रमें और दुहाई देंगे महान् सात्त्विकताकी। भारतको थपकियां दे देकर सुला लिया अपनी गोदमें तमने, और लोग कहने लगे

धर्मके कारण, त्यागके कारण ही भारतकी यह दशा हुई। मैं तुमसे पूछता हूं, तुम्हीं बताओ, सत्त्वमें प्रतिष्ठित जातिकी कभी यह दशा हो सकती थी?

(दुर्गंधयुक्त केश, मैले-कुचैले वेशमे तमका प्रवेश। उसके प्रवेश करते ही चारो ओर झाईं पड जाती है। सत्त्व निष्प्रभ हो जाता है।)

तम–लोग कहते हैं, रज रावण-सा अभिमानी है, पर तुममें भी अभिमानकी कितनी बू है, यह देखकर लोग चौंकेंगे।

(सत्त्वका अतर्द्धान)

(रजका हाथ पकडकर) आओ रज, हम और तुम दोनो मिलकर विश्वमें राज्य करे।

रज–(हाथ छुडाकर) हटो, हटो, अधमरे बैलसे खीची जानेवाली बैलगाडीमें कछुएकी चालसे चलनेवाले राजा बनने चले है–राजा बनेंगे!

तम–इतनी ऐंठ! अच्छा देखूंगा, देखूगा तुम दोनोको–

(कुढकर प्रस्थान)

रज–प्रवृत्ति! प्यारी! तुम कहां हो?

(भोग-विलासकी उद्दाम लालसाकी सजीव प्रतिमा, प्रवृत्ति सुन्दरीका प्रवेश)

प्रवृत्ति–यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हो?

रज–तुम्हारा ध्यान।

प्र०–कैसा लगा?

रज–इतना मीठा कि उससे बढ़कर शायद कहीं कुछ और है ही नही।

प्र०–मै तुम्हे एक खबर सुनाने आयी हू, कुछ इकरार करो तो कहू।

रज–और तुम्हारी खबर झूठी निकली तो?

प्र०–मै तुम्हारी गुलामी स्वीकार कर लूगी।

रज–यदि सच्ची निकली तो मै तुम्हारा गुलाम बनकर रहूगा। प्रिये! पृथ्वीपर ऐसा कौन है जो तुम्हारे सामने अपना पराभव आप स्वीकार न कर ले?

प्र०–नाथ! भारतके जगलोमें वन-पशुओकी तरह जीवन बिताने-वाले कुछ ऐसे पुरुष है जिनका कहना है कि मै स्वर्गकी देवी नहीं–नरक-कीट हूं; मेरे रूपमें ज्योति नहीं–ज्वाला है; ओठोमें अमृत नहीं–जहर है, यह लाछन मुझसे सहा नही जाता।

रज–मूढ़ है वे। वे क्या जानें कि तुम यदि प्रकट न होतीं तो जीवन एक विकट मरुभूमि हो जाता।

प्र०–मेरा यही एक दोष है कि मै लोगोको सिखाती हूं, भोग-का सुनहला पल ही जीवन है, प्रेम-मदिराका पान ही जीवनका उपभोग है।

रज–मुझे राजा बनने दो तब देखूगा कि कैसे दुनिया तुम्हारे आगे घुटने नही टेकती। मुझे राजा बनने दो, –राजा–

तम–(प्रवेश करके) कौन बनेगा राजा?

रज–मै, मै और कौन? मेरे समान पथ्वीपर और कौन है?

आओ प्रिये !

(एक-दूसरेका हाथ पकड प्रस्थान)

तम–रज राजा बनेगा? (धमसे पृथ्वीपर बैठ जाता है।)

(गैंडेके पेटसे शरीरवाली, ऊटके ओठसे मोटे ओठवाली अ-प्रवृत्तिका प्रवेश)

अप्रवृत्ति–तुम रो रहे हो?

तम–हां।

अप्र०–क्यो ?

तम–रज राजा बनेगा, इसी दुःखसे।

अप्र०–इतनी प्रभुता रखकर तुम रोते हो? अदना-अदना-सी बातोमें यदि पुरुष रोने लगें तो स्त्रियां क्या करेगी? राज्य चाहते हो तो अपने बाहुबलसे ले लो, झींखते क्यो हो?

तम–बाहुबलसे ? –ना, लडना-भिडना मुझसे नहीं हो सकेगा।

अप्र०–अच्छा, सो तो सकोगे–पैर पसारकर सो रहो, सुख सोनेमें है।

तम–रज सुखसे सोने देगा?

अप्र०–क्या मजाल! आओ, हम-तुम मिलकर नभमें ऐसी घटा फैला दें कि सूर्य-चद्र तो क्या तारे भी आखें न खोल सके; और उस तिमिरमें पृथ्वीको लपेटकर तकिया बनाकर सो रहें। क्या मजाल जो हमें कोई छेड़े। आह! तुमसे बातें करते-करते थक गयी, जाती हूं।

(प्रस्थान)

(अपन भूपर त्रिभुवनको नचानेवाली मायाका सत्त्व और रज-के साथ प्रवेश)

माया—सत्त्व! तुझे अपने कुलकी मर्यादा नहीं सुहाती! तू ऐसा कुलागार निकला!

सत्त्व—(सिर नीचा कर लेता है।)

माया—बोल, चुप क्यो है? तू सोचता है कि तू मेरा पुत्र है इस-लिये तेरी लातें सहती रहूगी?

सत्त्व—नहीं, नहीं, ऐसा मत कहो। मेरा जन्म योगके लिये है, भोगके लिये नहीं।

माया—देख, सहनेकी एक सीमा होती है; तू मुझे लाचार मत कर।

सत्त्व—मैं तुम्हे त्याग सकता हू, राज्यसे निर्वासनका दड स्वीकार कर सकता हू, पर सत्यको, महामायाको—

माया—(जलकर) तो जा अपनी महामायाके पास—अभी चला जा—दूर हो जा मेरी आखोके सामनेसे!

सत्त्व—माताकी आज्ञा शिरोधार्य है।

(प्रस्थान)

माया—जाय वह अपनी महामायाके पास। देखूंगी—देखूंगी कैसे वह पृथ्वीपर सत्यका विस्तार करता है? रज, तू प्रवृत्तिके साथ और तम, तू अप्रवृत्तिके साथ ऐसे-ऐसे दानव पैदा कर कि देवताओ-का भी दिल दहल उठे। (सोचकर) ना, शासनकी बागडोर मैं अपने हाथोमें रखूगी। मेरे बेटे आओ— (जाना चाहती है)

(वल्कल परिधान किये सत्त्व अपने पूर्ण तेजके साथ पुन प्रवेश करता है।)

सत्त्व—माता! अपने कुपुत्रका प्रणाम ग्रहण करो।

(सबकी आखें चौंधिया जाती है और वे अदृश्य हो जाते है।)

(दिव्य-स्वरूपा निवृत्तिका सन्यासिनी-वेशमे प्रवेश)

निवृत्ति—प्रभो! जिस देवकार्यके लिये आप प्रस्थान कर रहे है उसमें क्या मै सहायक नहीं बन सकती?

सत्त्व—प्रिये! तुम्हारा यह ताजे फूल-सा शरीर इस सूखी तपस्या-में कैसे टिक सकेगा?

नि०—जहा आप है वहीं सर्वसुख है और जहा आप नही है वही है घोर यंत्रणा।

सत्त्व—तो आओ प्रिये! हम लोग तपस्या कर महामायाको प्रसन्न करे।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—मायाका दरबार

(प्रधान मत्री अहकार और काम-क्रोध आदि)

अहं—काम! तुम ज्ञानका गर्व चूर्ण कर सकोगे?

काम—इसीलिये तो मेरा जन्म हुआ है।

अहं—मै तुम्हें सेनापतिके पदपर नियुक्त करता हू। लोभ! तुम कर सकोगे?

लोभ—क्या अमात्यवर!

अह—(सिर हिलाते हुए) हा, तुम कर सकोगे।

लोभ—आप मुझे क्या करनेको कह रहे है?

अह—अंधा बनानेको कह रहा हूं।

लोभ—किसे?

अहं—मनुष्यको।

लोभ—कैसे?

अह—स्वार्थसे।

लोभ—(सोल्लास) स्वार्थके तांडवसे विश्वको खाडवकी तरह दहन करनेके लिये ही तो मै भूतलपर भेजा गया हू, और यदि आप लालसासे कह दें कि वह मेरा साथ दे तो मै मानवहृदयमें वह आग लगा दूं जिसे प्रलयकी वर्षा भी न बुझा सके।

अह—जरूर वह तुम्हारा साथ देगी। क्रोध! लोभ जब जगत्में स्वार्थका युद्ध छेड देगा तब तुम क्या करोगे?

क्रोध—तूफान उठा दूगा। मनुष्यको जलती-बलती आगमें दौड़ पडनेके लिये उकसा दूगा।

अहं—एक काम और करना—तूफान उठानेसे पहले हिंसाको बुला लेना और उसे मानव-हृदय-दुर्गमें इस तरह छिपा रखना जैसे बममें बारूद रहती है।

क्रोध—और द्वेषको, उसे मै नहीं छोड़ सकता मन्त्रिवर!

अह–तुम्हे खुली आज्ञा है, जब जिसे जहा चाहो बुला सकते हो। मोह! कामना-वासनाकी मदिरा पीकर जब मनुष्योकी आंखें ढुलकने लगेंगी तब तुम क्या करोगे?

मोह–उनके हृदयमें प्रवेश कर महारानीकी जय-ध्वजा फहराऊंगा।

अहं–अच्छा, तुम लोग जाओ। सशय कहां है? वह अभीतक आया नहीं!

(जयघोष करते सबका प्रस्थान)

(टहलते-टहलते) ऊहू–ठहर सकेगे–ये ठहर सकेगे वैराग्यकी आधीके सामने–

(धुआ उडाते हुए एक आखके अधे सशयका प्रवेश)

अह–तुम आ गये। संशय! तुम्हें मै खुफिया विभागके अध्यक्षके पदपर नियुक्त करता हूं। राज्यमें कहा क्या हो रहा है, किसके भीतर कहा छिद्र है, तुम तमाम झांक-झांककर देखना। जिसे देखो कि हमारे चंगुलसे निकल भागनेके लिये हाथ-पैर हिलाने लगा है उसे कुतर्कके कुपथपर घसीट लाना, जिससे वह हा-नाके झूलेमें झूलने लगे। अच्छा, जाओ। (फिर टहलने लगता है)

हां, ठीक है। जबतक उसका चित्त डावाडोल रहेगा–(चौककर) ओ! यह तो मैंने सोचा ही न था। जिन्हे शकाकी झंझा डिगा नहीं सकेगी?...

(सशयको देखकर) तुम गये नहीं–खड़े हो! कुछ कहना चाहते हो?

संशय–(डरते हुए) यदि विश्वास मेरा पग...

अहं–मैं भी यही सोच रहा था। अच्छा, तुम जाओ, मुझे सोचने दो।

(संशयका प्रस्थान)

बिना वासनाके मायाके गढ़का निर्माण हो सकता है–कभी हो सकता है? (ठहरकर)

उसके ताने और मेरे बानेसे एक ऐसा जाल बुना जा सकता था जिसमें मनुष्य आ-आकर फसते, रोते, चिल्लाते और निकल न पाते। किंतु, बिना उसके–बिना उसके–(सोचता है)

(रक्तवर्णा, पूर्ण-यौवना आसक्ति एक कोनेमें आकर खडी हो जाती है।)

(उसी धुनमें) ओह! कैसा आकर्षण है! ना, मैं उससे प्रेम करूंगा–उसके विषैले होठोंका रसपान कर अमर होऊंगा।

(देखकर) कौन? आसक्ति? तुम कब आयीं? कहां है वासना?

आसक्ति–जहां आप हैं।

(विविध भूषणोंसे अलंकृत, स्नो, क्रीम, पाउडरसे सुशोभित अनंत-यौवना वासनाका प्रवेश। उसकी आंखोंमें आंधी और मुस-कानमें है शीतल ज्वाला।)

अहं–तुम्हें कभी मेरी याद आती थी वासना?

वासना–नहीं।

अहं–कैसा सूखा जवाब है! तुम्हें क्या दूसरोंके दिलको पैरों-

से रौंदनेमें ही मजा आता है? तभी तुम्हारे गलेमें विजयमाला डालनेकी इच्छा होती है।

वास०–(मुसकराती है)

अह–तुम्हीं मायाके राज्यकी नींव हो। तुम्हारे बिना मनुष्यके भीतर भोगैषणाका वह सोता कौन बहा सकता है जो कभी सूख न सके; वह प्यास कौन जगा सकता है जो कभी बुझ न सके। कौन? –तुम्हारे बिना कौन उसे मरीचिकाके पीछे प्यासे हिरणकी तरह जीवनभर भटकाये रख सकता है?

वास०–मैं जाती हूं। मेरी झूठी प्रशंसा कर तुम मुझे ठगना चाहते हो।

अहं–ठगना चाहता हूं तुम्हें जिसमें दुनियाको ठगनेकी शक्ति है? आओ, अब हम दोनों मिलकर ससारको ठगें और उसे कान पकड़कर कठपुतलीकी तरह नचावे।

(एक हाथ आसक्तिके और दूसरा वासनाके गलेमें डाले प्रस्थान)

(प्राणके साथ काम-क्रोध आदि आते है। वह न्यायाधीशके आसनपर बैठकर राजशपथ पढता है और सब एक-एक करके दोहराते है। उसके बाद)

प्राण–(सबको सबोधित करके) देखो, जो माया देवीकी छत्रछायामें अचेत पडा रहे उसे तुम कभी न छेड़ना, पर जिसे मायाको जीतनेके लिये साधनपथपर चलते देखो उस राजद्रोहीको–

क्रोध–(पैर पटककर) कुचल डालूगा।

काम–पीस डालूगा।

मोह–अंधा बना दूंगा।

(मायाका प्रवेश। सब अदबसे खडे होकर 'जय महारानी मायाकी जय' कहते हैं।)

माया–तुम लोगोकी राजभक्ति देख मैं बहुत प्रसन्न हुई। मुझे पूरी आशा है कि तुम लोग ऐसा प्रताप दिखाओगे कि जैसे जीवन-के ऊपर मृत्यु गरजती है, वैसे त्यागके ऊपर भोग, प्रकाशके ऊपर अंधकार और ज्ञानके ऊपर अज्ञान गरजेगा। सत्त्व! देखूगी तुझे, देखूंगी कौन ऐसा हृदय है जो मेरा लोहा नहीं मानता! आओ वीरो–

(मायाके पीछे जयघोष करते सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान–महामायाके राजप्रासादका एक हिस्सा

(महामाया और सत्त्व)

महा०–तुम कहते हो कि तुमने ऐसे-ऐसे महारथियोंको खड़ा किया है जिनके सामने शत्रुओका महावीर्य भी विचलित हो उठेगा; लेकिन तुम नहीं जानते सत्त्व! अज्ञानकी शक्ति कैसी प्रचंड है!

सत्त्व–इसके उत्तरमें मै यही कहूगा कि सिर्फ विवेककी ओर आप आखें उठाकर देखें–देखें उसमें कैसी शक्ति है, कैसा कौशल है? –मै यह दावेके साथ कहता हूं कि शत्रुदल कैसा भी व्यूह क्यो न रचे, उसका भेदन करके ही वह चैन लेगा।

महा०—अकेला विवेक मायाकी इन पल्टनोके सामने क्या कर सकेगा सत्त्व ?

सत्त्व—अकेला विवेक क्यो जननी ! आप देखेंगी, वैराग्य जब शख बजाकर रणमें उतर पडेगा तो उसकी विजय-वाहिनीके वीर-पद-भारसे शत्रुदल वैसे ही कंपित हो उठेगा जैसे केशरीके हुकार-से शशक।

महा०—अहंकारको क्या तुमने जंगलोकी सूखी लकड़ी समझ रखा है जो वैराग्यके छूते ही भस्म हो जायगा ? अच्छा, तुम जाओ वत्स !

(सत्त्वका विचारते हुए प्रस्थान)

कहां है मानव-कल्याणका सूर्य—ज्ञान !

(ज्ञानका प्रवेश)

महा०—वत्स ! देखते हो उस वृक्षको, कैसे वह अपनी उंगलि-योसे आकाश छूनेका व्यर्थ प्रयास कर रहा है, पर करे क्या—ऊपर उठे कैसे ? —पग पकमें गडा है। यही दशा है बेचारे मनुष्यकी।

ज्ञान—अमृत-पुत्रकी यह दशा देखकर मुझे बहुत तरस आता है जननी !

महा०—एक बड़ी अच्छी बात यह है कि वह किसी अवस्थामें भी तृप्त नहीं हो पाता। देवता स्वर्गीय भोगसे तृप्त है, पशु-पक्षी अपनी आवश्यकताकी पूर्त्ति होते ही तृप्त हो जाते है, एक मनुष्य ही ऐसा है जो कभी,—किसी तरह भी पूर्ण तृप्त नहीं हो पाता। वह इच्छुक है सागर-सगमका, भूखा है अनत सुखका,

प्यासा है सुधा-सिधुका। उसी अनंतकी ओर उसे ले जानेके लिये वैराग्य, भक्ति आदिका जन्म हुआ है। जाओ, उन्हें अपना-अपना स्थान ग्रहण करनेको कहो।

(अतर्द्धान)

ज्ञान–यदि साधकको वैराग्य आदिके भरोसे छोड़ दिया जाय तो क्या सदियोमें भी उसके सघर्षका अत होगा? उसे .....

(वैराग्यका प्रवेश)

वैराग्य–देवने मुझे स्मरण किया था?

ज्ञान–वैराग्य! यदि मै तुमसे पूछू कि पृथ्वीपर तुम्हारा आना क्यो हुआ है तो तुम क्या उत्तर दोगे?

वैरा०–इसके उत्तरमें मै यही कहूगा कि मेरा पृथ्वीपर आना, मनुष्यको वह शिक्षा देनेके लिये हुआ है जिससे कि वह सत्यकी वेदीपर अपना सर्वस्व होम करनेके लिये तत्पर हो सके।

ज्ञान–यह तो मैने माना, पर जिसके भीतर इसकी इच्छा ही नहीं जगी, वहां तुम क्या करोगे?

वैरा०–यह तो मैने कभी नहीं सोचा–देव! कहिये उसके लिये क्या करना होगा?

ज्ञान–प्रतीक्षा करनी होगी–जबतक उसके विकासका समय न आये, प्रतीक्षा करनी होगी।

वैरा०–उसके विकासका समय कब आ सकता है?

ज्ञान–किसके विकासका समय कब आयेगा यह बताना कठिन है–ससारके घात-प्रतिघातोंसे जब मनुष्यका मन चूर-चूर हो जायगा,

तब वह एक दिन चिल्ला उठेगा, "क्या इस चक्कीके दो पाटोंमें दानेकी तरह पीसे जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है"-यहींसे आरंभ होगा उसके जीवनका पासा पलटना।

वैरा०-तो यहींसे हम अपने कार्यका समारभ समझें?

ज्ञान-हा, यहींसे आरंभ होगा स्वर्गके साथ नरकका घोर संग्राम, अमृतत्वका मृत्युके साथ घोर संघर्ष। जाओ वत्स! इसके लिये विवेक आदिको तैयार करो।

(प्रस्थान)

वैरा०-(आकाशकी ओर देखकर) धर्माकाश कैसा धूमावृत हो रहा है! चलूं देखूं-

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान-पर्णकुटीर

(वैराग्य और विवेक)

वैरा०-विवेक! तुम क्या सोच रहे हो?

विवे०-मैं यही सोच रहा हूं कि जिसका हृदय-द्वार वासनाने भीतरसे बंद कर बाहर 'प्रवेश-निषेध' का साईनबोर्ड टाग दिया है वहां मैं कैसे प्रवेश करूंगा?

वैरा०-जैसे जहाजमें एक छोटेसे छिद्रसे पानी।

विवे०-जहां प्रवेशके लिये एक छिद्र भी न हो?

वैरा०—उसके वंद दरवाजेको ही खटखटाते रहना और मौका पाते द्वार ठेलकर भीतर घुस पड़ना।

विवे०—उसके बाद ?

वैरा०—उसके बाद उसे त्यागके चरणोमें भोगकी, परमार्थके चरणोमें स्वार्थकी बलि चढानेकी शिक्षा देना। उसे प्रत्यक्ष दिखा देना कि विषय-वासना उसे वैसे ही नीचेकी तहमें लिये जा रही है जैसे कुआं खोदनेवाला नीचे-ही-नीचे उतरता चला जाता है।

विवे०—देखकर भी वह न देखे, मार-पर-मार खाकर भी न सीखे तो ?

वैरा०—उकताना नहीं, घबड़ाना नहीं—प्रतीक्षा करना, जबतक उसके मनमें यह न बैठ जाय कि विषयानद भगवदानदके सामने वैसा ही फीका है जैसे सूर्यके प्रकाशके सामने चद्रबिब। विश्वास कहा है, जाओ, उसे भेज दो।

(विवेकका प्रस्थान)

(चिंतितभावसे टहलते हुए) अकेला विवेक! अकेला वह क्या कर सकेगा? जिसका अतर अमानिशाके सदृश तमसाच्छन्न हो रहा है वहा अकेला वह—क्या करू, किसे वहा जानेको कहू ? (सोचता है) हा, एक वही है जो—किंतु, किंतु वहां! ऐसे विकट स्थलमें! उस देवीको! —ना, ना, मै नहीं—उससे मै नहीं कह सकूगा। यदि वह स्वय—

(पीतवसना, मधुवर्षिणी भक्तिने प्रवेश कर कहा)—हां, मै स्वय वहा जाना स्वीकार करती हूं।

वैरा०—जाओगी—जा सकोगी ? देवि ! जिसका हृदयाकाश दैत्य-सैन्यकी भाति काले-काले बादलोसे घिरा है वहा तुम कैसे प्रकट हो-ओगी ? —क्या बिजलीकी भाति—

भक्ति—नही, नहीं—वहां मै इद्रधनुकी भाति प्रकट होऊंगी।

वैरा०—धन्य हो ! देवि ! तुम धन्य हो ! करुणा करके इतना और करना कि भीतरी आगसे जलकर, नरकके भयसे भाग-कर, जब कोई तुम्हारे पास आवे, तुम्हारी गोदमें स्थान पा सके, तुम्हारे स्तनका दुग्ध पान कर सके। छल-कपटका रोब-रुआब सह-कर, शकाकी झिडक सुनकर, अविश्वासकी लाते खाकर भी देवि, उसका त्याग मत करना। मै जानता हूं, वहां तुम्हें मरणातक कष्ट सहना पड़ेगा; फिर भी एकाध बार जब उसके मुंहसे कृष्ण नामकी अमिय-बूद टपके, उसे ही पी-पीकर तबतक जीना जबतक—

(विश्वासका प्रवेश)

विश्वास—देव ! बाहर एक अजीब शक्लकी युवती दर्शन-प्रार्थिनी है।

वैरा०—कौन है वह ? कहो ठहरे। सुनो विश्वास ! भग-वान् हे, मनुष्य उसे पा सकता है, इन्हीं आखोसे देख सकता है, उसे यह सुझाना ही है तुम्हारा काम।

विश्वा०—यह तो मै करनेके लिये तैयार हूं पर यदि वह शंका-की गठरी पीठपर लादे, टटोल-टटोलकर, पग-पगपर ठोकरे खाते चलना ही पसद करे तो मै क्या करूगा—उससे क्या कहूगा ?

वैरा०—कहना-सुनना कुछ नहीं—अविश्वास, अविचारके राज्य-

में कहने-सुननेसे कुछ नहीं होता; ऐसा कुछ कर दिखाना होगा जिससे उसके जीमें बैठ जाय कि विश्वास पहाडको भी हिला सकता है, विश्वास ही मोक्ष है, विश्वासमें ही मुक्ति है। जाओ वीर! जगत्में आलोकके विस्तारमें सहायक बनो! कौन है वह युवती? बुलाओ उसे।

(बाहर जाकर विश्वास, काली-कलूटी विरक्तिके साथ पुन आता है।)

वैरा०—कौन हो तुम? क्या है तुम्हारा नाम?

विर०—विरक्ति।

वैरा०—ऐं! विरक्ति यहा कैसे?

विर०—मै आपकी सहायता करने आयी हू।

विश्वा०—अथवा भेदिया बनकर भेद लेने आयी हो। मै देखते ही ताड़ गया था कि हो-न-हो यह कोई शत्रुदलकी भेदिया है।

वैरा०—यहां तुम्हारी दाल नहीं गलेगी—चली जाओ यहांसे।

विर०—(सिर मटकाकर) देखनेमें तो आप सुन्दर है चाद जैसे और बातोकी मार मारते है तीर जैसे। मै तो आपपर मरती हूं और आप कहते है चली जाओ।

वैरा०—तुम क्या उस जन्ममें सूर्पनखा थीं?

विर०—आपको क्या उस दर्पी लक्ष्मण जैसे बननेका शौक है? यदि आप मुझे अपने पास रख ले तो मै जिसे देखूगी दरिद्रताकी चोटसे, ससारके बोझसे झल्ला उठा है उसे—

वैरा०--बस, वस, रहने दो। कृपाकर जहांसे आयी हो वहीं चली जाओ।

विर०--वे कहते हैं मैं मनुष्यका मन भोग-विलासमें रमने नहीं देती। हाय! मैं क्या करूं?

वैरा०--मैं कहूं सो करोगी? मेरे रूपको विकृत करना, मेरे नामका अपने मुखपर प्रलेप चढाना छोड दो।

विर०--कदापि नहीं। जो तुम नहीं चाहते वही करूंगी, और करूंगी--खूब करूगी। यदि मैंने अपने अनुयायियोसे संसारको न भर दिया तो मेरा नाम नहीं--

(वेगसे प्रस्थान)

वैरा०--विश्वास! यह तो बड़ा अनर्थ मचायेगी (सिर झुकाकर सोचता है।) नहीं हुआ--अभी भी मेरा कार्य पूरा नहीं हुआ। कौन है? --कौन है वह शक्ति जो साधकको बड़े-बड़े प्रलोभनोसे, अग्नि-परीक्षाओंसे, अनायास पार होनेकी क्षमता देती है, साहस देती है? कौन है वह--

(आलुलायितकुतला, अग्निस्वरूपा इच्छाशक्तिने प्रवेश कर कहा)--उसका नाम है इच्छाशक्ति।

वैरा०--आ गयीं! देवि! तुम आ गयीं। जबतक साधकके भीतर तुम जल न उठोगी, वह क्षुद्राशयतासे म्रियमाण होकर पडा रहेगा--तुम्हीं उसमें जान फूंक सकती हो।

इ० शक्ति--जो मेरा हाथ पकडकर चलना सीख लेगा, उसे तो मैं महत्प्रयासी, सत्यसकल्पी बना दूंगी पर जो 'मैं दुर्बल हूं,

'मैं दीन हूं' कहकर रोया करेगा उसकी तो मैं परछाईं भी छूना न चाहूंगी।

वैरा०-यह क्या वीरमार्गप्रदर्शिनि !. मुर्देमें जान भर देना ही तो तुम्हारा काम है। चलो ज्ञानदेवके पास चलें।

(प्रस्थान)

पांचवां दृश्य

स्थान-आनंदनिकेतन

(प्रज्ञा और ज्ञान)

प्रज्ञा-क्या ही अच्छा होता यदि साधकको सिखाया जाता समर्पणका सीधा और प्रकाशपूर्ण मार्ग-उसकी उठती नीचेसे पुकार और ऊपरसे उतरता माताका प्रसाद !

ज्ञान-पर सुनो देवि ! वैराग्य, कालसे भी क्रूर, सांपसे भी दुष्ट अज्ञानको चुटकीसे मसल डालना चाहता है। वह नहीं जानता कि यह वह दिन ले आयगा जब इसके अत्याचारसे मेघ रक्त-वर्षा करने लगेगा, समुद्र जल उठेगा, चंद्रमा अगारे बरसाने लगेगा और पृथ्वी-पृथ्वी तो बन जायगी एक ज्वालामुखी पर्वत-जिसके भीतर-भीतर तो भभकेगा दावानल और ऊपर खिली रहेगी हरी-हरी दूब-विलासका ठाट-बाट !

(वैराग्यका प्रवेश)

वैरा०-देव ! हम लोग युद्धके लिये प्रस्तुत हैं, आप हमारी

सेनाको कूच करनेके लिये आज्ञा दें, आशीर्वाद दें।

ज्ञान–तुम्हे इस युद्धमें सफलता दिखायी देती है वैराग्य?

वैरा०–आप चिंता न करे। सभी कहते है, अहकार सिर-की चोटीसे पैरोके नाखूनतक बदमाश है–आवे वह रणरगमें, आवे वह हम लोगोके सामने! आप हमें आज्ञा दें–

ज्ञान–(स्वर उतारकर) अच्छा, जाओ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

(वैराग्यका प्रस्थान)

वैराग्य नहीं जानता, यह प्रसाद-शक्ति क्या है? यदि जानता तो अपने बलपर इतना न कूदता। वह क्या जाने कि यह वह शक्ति है जो साधकोको अनतकी ओर खोल देती है और सदियो-में होनेवाले कार्यको कुछ दिनोमें कर दिखाती है। यह वह शक्ति है जो कुटिल और विपरीतको हथौडेकी चोटसे सीधा कर देती है और जो रास्ता साफ करनेवाले है उनकी शक्ति सौगुना कर देती है। यह वह शक्ति है जिसके स्पर्शसे विपक्षीगण काप उठते है और स्वपक्षीगण हस पड़ते है। जिसके आधारमें इस शक्तिका उतरना आरंभ हो गया, भगवान् उसके हो गये, प्रकाशके स्वर्गका द्वार उसके लिये खुल गया।

प्रज्ञा–मै जाऊं और जाकर अभीप्सा, शाति आदिको जगाऊ। इनसे साधकोका बहुत उपकार होगा।

ज्ञान–जाओ देवि! और उनसे कहो कि जब वे देखें कि कोई उनसे मिलनेके लिये एक कदम आगे बढता है तो वे उससे मिलने-

के लिये दस कदम आगे बढ़ें।

(प्रज्ञाका प्रस्थान)

(जूहीके फूलसी शुभ्रवदना सरलताका प्रवेश)

ज्ञान–तुम अबतक कहा थीं सरलता?

सर०–अपनी कुटियामें। छोटी-सी सरलताको पूछता ही कौन है?

ज्ञान–छोटी-सी सरलता–जानती हो भगवान् छल-छिद्रसे कैसे भागते है? देवि! तुम मनुष्यको भक्त सजना नहीं, भक्त बनना सिखाओ। उन्हे मुखसे ही 'मै तेरा' नहीं, मनसे भी 'मै तेरा' कहना सिखाओ।

(वैराग्यका पुन प्रवेश)

वैरा०–देव! मैंने एक भूल की है–बिना धैर्यके सिद्धि कहा? बिना उसके युद्धमें मेरी विजय कहा? वही सफलताका जनक और सिद्धियोका सहोदर है। उससे कहें कि वह साधकोको वह मत्र सिखावे जिससे उनका साहस न छूटे, लगन न टूटे, लबे सफर-की थकावटसे श्वास न फूले, दम न घुटे।

ज्ञान–हा, जो धैर्यकी बाह गहे रहेगा, सफलता उसके पग अवश्य चूमेगी। जाओ। मै उससे कहूगा।

(वैराग्यका प्रस्थान)

वह देवी कौन है जो मरुप्रदेशमें भी मीठे पानीका सोता बहा देती है!

(भक्तिका प्रवेश)

भक्ति! पूर्ण चंद्रकी चंद्रिका-सी, अपने वैभवसे सबको नहला

देनेवाली शांति कहां है?

भक्ति–वह आपके डरसे मूर्छित होकर पड़ी है।

ज्ञान–मेरे डरसे? यह क्या? वह तो मुझे प्राणोसे भी प्यारी है। याद तो नहीं आती कि मैंने उसे कभी कुछ कहा हो।

भक्ति–कभी कुछ तो नही कहा, पर आज कुछ कह दें इसीलिये वह घबरा रही है।

ज्ञान–क्या कह दें?

भक्ति–यही कि, जाकर घर-घरमें निवास करो। वह कहती है, जो घर मंदिर-जैसा स्वच्छ और पवित्र है वहां आप कहे तो वह दिन-रात बैठी रह सकती है; पर जो घर सांप-बिच्छुओसे भरा पड़ा है कहीं आप उसे वहां जानेको कह दें तो वह जीते-जी मर जायगी।

ज्ञान–अच्छा, मैं उसे वहा जानेको नहीं कहूंगा। पर तुम कोई ऐसी शर्त मत रखना देवि! सबके लिये अपने हृदयका द्वार खोल दो, मरुभूमिकी तप्त छातीपर मंदाकिनीकी वह धारा बहा दो कि सूखी डालें भी हरी हो जायं। (सोचता है) ना, जाऊं मैं उस शक्तिको जगाऊं जो सहस्रो दोष सहनेवाली और पद-पदपर सम्हालनेवाली है–साधकोके बार-बार चूकनेपर भी उनका साथ देनेवाली है– (प्रस्थान)

(ब्रह्मचर्यके पीछे-पीछे तपस्याका प्रवेश)

तपस्या–(झटसे आगे आकर) यह कैसा जुल्म है! तुम लोगोकी यह कैसी धारणा है कि साधकोको मैं सुखाकर ठठरी बना देती हूं।

तुम वृक्षको धूपमें जलते तो देखती हो पर उसके अन्दर जो जल है, उसमें जो तरावट है उसपर तुम्हारी नजर नहीं जाती ?

(तेजीसे प्रस्थान)

ब्रह्मचर्य–देवि ! क्या इस दरबारमें मेरा कोई स्थान नहीं है ?

भक्ति–कौन कहता है नहीं है ? –तुम्हारा बल, वीर्य, विद्युत् ही तो–

(भीतर-ही-भीतर सुलगनेवाली अभीप्साका अगडाई लेते हुए प्रवेश)

क्या तुम अभीतक सो रही थीं अभीप्सा ?

अभीप्सा–हां, उठनेको जी नहीं चाहता था।

भक्ति–क्यो ?

अभीप्सा–स्वप्नमें मैं सूर्यदेवको देख रही थी–उठनेसे सर्वत्र अधकार ही अधकार दिखायी देगा इसलिये उठनेमें भय मालूम हो रहा था।

भक्ति–अंधकारसे इतना भय; तब तो वह पृथ्वीपर निष्कटक राज्य पा लेगा ?

अभीप्सा–ऍं ! निष्कटक राज्य पा लेगा ! तो मुझे क्या करना चाहिये ?

भक्ति–तुम आप उठो और जगको उठाओ, ऐसी ज्योति जगाओ कि सारा जहान–

(एक ओरसे ज्ञानके साथ महामाया और दूसरी ओरसे विवेक-वैराग्य आदि स्तुति करते हुए प्रवेश करते है।)

जयतात्सा जगन्माता जननी जन्मदायिनी।
अज्ञाननाशिनी देवी योगसिद्धिप्रदायिनी॥
अनुग्रहपरा देवी सर्वदामृतवर्षिणी।
अनन्तमहिमापारा दिव्यैश्वर्यप्रदायिनी॥
महाकाली महालक्ष्मी मुक्तिरूपा महेश्वरी।
महामाया महानन्दा निर्वाणपथदीपिका॥
त्वं प्रसीदामृते देवि ज्योतिर्मयि सरस्वति।
नमामि त्वां विश्वरूपे देहि मे ज्ञानचन्द्रिकाम्॥

महा०–जयोऽस्तु।

ज्ञान–अपनी चेष्टाओंके बलपर साधक प्राणोंमें अनुभवका विलास भले कर ले, चकित कर देनेवाली सिद्धियां भले प्राप्त कर ले, पर जगदीश्वरि! क्या उसका आधार दिव्यानन्द, दिव्य प्रकाशकी बाढ़से परिप्लावित हो सकता है, तुम्हारी सम्पदासे भर सकता है?

महा०–परन्तु ज्योतिपुंज! जो कुएँसे जल खींच-खींचकर फसल पैदा करना चाहता है उसके पीछे क्या मैं अपनी सपदा लेकर दौड़ती फिरूंगी?

ज्ञान–लेकिन जो तुम्हारे चरणोंका आश्रय पानेके लिये हर्ष और उल्लाससे दौड पड़ेगा, उसे तो तुम स्वीकार करोगी, उसे तो अपना वैभव दान करनेके लिये तत्पर रहा करोगी?

महा०–तथाऽस्तु। श्रद्धाके घोडे जोतकर जो शरणागतिके

रथपर बैठ जायगा उस रथकी सारथि बनना मै स्वीकार करत
हू और खुले शब्दोमें प्रण करके कहती हू कि साधनाके रणरंग
रथको ले जानेपर जो उससे उतरकर भाग नही जायगा उसे उस
महान् लक्ष्यपर पहुंचाकर ही रहूगी।

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान–दामोदर पंडितका घर

(दामोदर और गोवर्धन)

दामो०–तो यह खबर ठीक है? विजयकी जमींदारीमें खान निकली है?

गो०–हां, पंडितजी। और एक साहब कहते हैं कि वह खान अबरककी है; वे उसे डेढ़ लाख रुपया देकर लेनेके लिये तैयार हैं।

दामो०–हा!

गो०–धनवान्के घर ही भगवान् छप्पर फाडकर धन देते हैं। रूखी रोटी चुपड़ना वे नहीं जानते। इस बुढापेमें यदि मेरे ससुरके लड़का नहीं होता तो आहा! उनका वह धानसे लदा खेत गोवर्धन ही तो पाता! भगवान्से सहा नहीं गया, दुखियोको तडपते देखनेमें ही उन्हें मजा आता है।

दामो०–इसमें भगवान्का क्या दोष? मैं तुमसे पूछता हूं–तुम जब कोई काम करते हो तब क्या तुम्हारे मनमें यह विचार उठता है कि 'उसे मैं नहीं कर रहा हू, भगवान् कर रहे हैं'?

गो०—नहीं, यह तो नहीं उठता।

दामो०—तब तुम स्वीकार करते हो न कि कर्मोंके करनेवाले तुम हो, ईश्वर नहीं, तब उसके भले-बुरेका दायित्व भगवान्‌पर कैसे चला जायगा? जो किया है सो पा रहे हो और जैसा करोगे वैसा पाओगे। समझे?

गो०—हां।

दामो०—क्या समझे?

गो०—पत्थर।

दामो०—आज तुम्हे हो क्या गया है?

गो०—जिसे न घर चैन न बाहर—भाग्यके फेरसे, घुसते ही घरमें जिसे स्त्री बिच्छूकी तरह डक मारनेको दौडती है और निकलते ही बाहर पावनेवाले अजगरकी तरह मुह बाकर खानेको दौड़ते है, उससे यदि आप पूछें कि क्या हुआ है तो वह क्या कहे? ससार मुझे सूइया चुभो-चुभोकर मार रहा है, चक्कीमें आटेकी तरह मैं और कबतक पीसा जाऊगा?

दामो०—झींखते क्यो हो—कोई उपाय ढूढ निकालो।

गो०—उपाय मैंने ढूढ निकाला है, पडितजी! आप बस हां कर दें।

दामो०—किस बातके लिये तुम मुझसे हामी भराना चाहते हो?

गो०—साधु बननेके लिये।

दामो०—यह क्या? यह क्या कह रहे हो गोवर्धन? साधु

बनोगे पेटके लिये, रुपयेके लिये, दुनियाकी ठोकरोसे बचनेके लिये? हाय रे भारत! अब तो तू अधोगतिकी शेष तहतक पहुच गया— अब ठहर जा, और कहांतक नीचे गिरेगा? आर्य ऋषिगण! देखते हो तुम अपने संतानोकी करतूत! देख सकते हो आकाशमें बैठे-बैठे! अपने स्थानसे च्युत होकर गिर तो नहीं पड़ोगे? गोवर्धन!

गो०—क्यो, पंडितजी! इसमें आपको कौनसा अनर्थ दिखायी देता है?

दामोदर—अनर्थ! अनर्थ पूछते हो गोवर्धन? इसमें क्या तुम अपनी भलाई देखते हो?

गो०—मैं तो इसमें अपनी भलाई ही भलाई देखता हू। क्या आप नहीं देखते कि भारतके नर-नारी साधुको देखते ही कैसे उनके पैरोपर गिरनेको दौड़ते हैं, धनी-मानी कितने आग्रहके साथ उनकी चरण-रज सिरपर चढ़ाते हैं? आहा! लोग खिलाते भी हैं, पांव भी धोते हैं और पैसे भी देते हैं!

दामो०—भगवान्! सुनते हो तुम—सुन सकते हो! कानोमें उंगली तो नहीं डाल लोगे! गोवर्धन! तुम मनुष्यको ठग सकते हो, भगवान्को नहीं ठग सकते!

गो०—भगवान्को ठगना! आप कैसी अटपटी बाते करते है? मैं भगवान्के लिये सब कुछ त्यागने जा रहा हू और आप भगवान्को ठगनेकी बात कह रहे है!

दामो०—जरा अपने भीतर पैठकर देखो तो! तुम्हारे अदरकी वृत्तियां भगवान्के लिये तड़प रही है या सुखभोगके लिये;

साधनाके कटीले पथपर चलनेके लिये आतुर हो रही है या जीवन-सग्रामसे भागनेके लिये ?

गो०–एँ ! साधु बननेमें भी कोई दोष हो सकता है यह तो मेरे जीमें कभी नहीं आया !

दामो०–दोष ही नहीं, यह विश्वासघात करना है।

गो०–(चिढकर) किससे विश्वासघात करना है ?

दामो०–पहले अपने-आपसे, फिर उससे जिसका बाना पहनकर तुम दूसरोके आगे हाथ पसारकर खडे होगे और फिर उनसे जो तुम्हें सत्यनिष्ठ समझकर तुम्हारा चरण छूने आयेंगे।

गो०–यह आप क्या कह रहे हैं ?

दामो०–सबके हृदयमें एक ज्योति जल रही है जो सचको सच और झूठको झूठ कह देती है, उससे पूछो, हम क्या कह रहे हैं।

गो०–तो फिर साधु किसे बनना चाहिये ?

दामो०–उसे, जिसके भीतर पुकार उठी है, जिसकी अंतरात्माने सब कुछ त्यागनेके लिये उसे विवश कर दिया है, जिसे भगवान्के बिना जीवन भार-सा लगने लगा है।

(इसका उत्तर खोजनेके लिये गोवर्धन इधर-उधर ताकने लगता है।)

दामो०–खोजो गोवर्धन ! खोजो–क्या अपने भीतर तुम वह पुकार पाते हो ? यदि नहीं तो उधर पाव मत बढाओ–यह आग है, इसमें मत कूदो।

गो०–अबतक मेरी आखोके सामने एक साफ, सीधा और

खुला हुआ रास्ता था। आपने मुझे दुविधामें डाल दिया।

दामो०—यह दुविधा शुभलक्षण है। जाओ, घर जाकर सोचो—जो सोच-विचारकर काम करता है उसे पछताना नहीं पड़ता।

गो०—सोचते-सोचते मैं थक गया; आप ही बताइये मैं क्या करूं? भगवान्‌ने मेरा ऐसा स्वभाव क्यों बनाया?

दामो०—इस अपराधके लिये भगवान्‌को दंड तो तुम्हे देना ही चाहिये; पर मैं साफ शब्दोंमें कहे देता हूं—साधुका भेष बना लेनेपर भी तुम वही धोबीके कपड़े ढोनेवाले गधेके गधे बने—

गो०—बस, बस, और जहर मत उगलिये। अब तो जो ठाना है करके ही रहूंगा। जो होनी हो सो हो।

(तेजीसे प्रस्थान)

दामो०—(गभीर होकर) जीवनमें एक ही सूझ मनुष्यको महान् बना देती है और एक ही कलुषित कर्म उसके सर्वनाशका कारण बन जाता है। क्या कहा जाय! चित्तमें चंचलता है, बुद्धिमें अनिश्चय है, मनमें निराशा है, प्राणोंमें लालसा है, शरीर-में तमस् है और वह चला है संन्यास लेने! हा भगवान्!

(चिंतित भावसे प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान–विजयके आलीशान महलका अत पुर

(विजय और अनिद्यसुन्दरी अजलि)

वि०–आजकल तुम्हारे मुखकी हँसी कहा चली गयी है अजलि?

अ०–मैंने उसे विदेश भेज दिया है।

वि०–क्यो?

अं०–क्योकि उसकी तुम्हारे पास कोई कदर न रही।

वि०–कदर नहीं रही कैसे जाना? तुमने भूल की है।

अ०–भूल की है तो बताओ मेरी भूल।

वि०–पहले हँसो।

अ०–पहले कहो।

वि ०–क्या?

अ०–मेरी हँसीका क्या दाम दोगे?

वि०–मुह मांगा दाम दूगा।

अ०–अगर मैं अपनी हँसीकी कीमतमें तुम्हे खरीदना चाहू तो बिक जाओगे मेरी हँसीपर? हो जाओगे मेरे संपूर्ण रूपसे?

वि०–सपूर्ण रूपसे?

अ०–सपूर्ण रूपसे तुम मेरे नहीं हो तो किसका तुमपर अधिकार है–तुम और किसके होना चाहते हो?

वि०– यह बतानेका अभी समय नहीं आया।

अं०–नहीं, मुझे बताओ। चुप हो। नहीं बताओगे? क्या

मैं तुम्हारी कोई नहीं हूं? (विजयका हाथ अपने हाथमे लेकर) बताओ, तुम सदा क्या सोचा करते हो—ऐसी कौन-सी चिंता है जो तुम्हे चैन नहीं लेने देती?

वि०—तुम्हें कैसे सुखी करूं इसीकी चिंता।

अं०—तुम मुझे भुलाना चाहते हो।

वि०—तुम्हे भुलानेकी मैं चेष्टा कर रहा हू, पर तुमने तो मुझसे भुलवा ही दिया।

अं०—क्या?

वि०—मेरा लक्ष्य।

अं०—तुम्हारा लक्ष्य क्या है?

वि०—कहां, यह सोचनेकी तुम मुझे फुरसत ही कहां देती हो? (जरा रुककर) अजलि! मेरा एक कहा मानोगी?

अं०—स्वामिन्! कब मैंने तुम्हारा कहा नहीं माना?

वि०—मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं जिस भूमिपर अपनेको उठा ले जाना चाहता हूं वहां तुम मेरा साथ दो—जिस प्रकार तुम मुझे प्यार करती हो, क्या भगवान्‌को उस तरह प्यार नहीं कर सकतीं?

अं०—(हसती हुई) भगवान्‌को ही तो मैं प्यार करती हूं—उसे ही तो पूजती हूं।

वि०—(आश्चर्यसे) उसे पूजती हो? कहा, मैं तो देख नहीं पाता।

अं०—नहीं देख पाते? तो दिखा दू अपना भगवान्, लेकिन तुम्हें भी अपना भगवान् दिखाना होगा।

वि०—मुझमें वह शक्ति कहा?

अ०—तो देखो मेरी शक्ति (विजयकी ठोडी पकडकर हिलाती है।) यही है मेरे जीते-जागते भगवान् जिन्हें मैं हर समय पूजती हूं।

वि०—मगर शुभे! भगवान् ही सब कुछ है, मनुष्य कुछ नहीं।

अं०—तुम्हीं मेरे लिये सब कुछ हो—तुम्हें छोडकर और किसीको मैं नहीं जानती, नहीं मानती, नहीं पूजती।

वि०—(ऊपरकी ओर देखते हुए) भगवान्! तुमने कैसा मधु-मय बधन रचा है!

अं०—कैसे तोड़ दें—यह बधन—कैसे तोड दें—यही सोचा करते हो न तुम दिन-रात! है न यही बात?

वि०—मेरे सोचनेसे क्या होता है! यह वह बधन नहीं है जो एक झटका मारते टूट जाय। यह वह बधन है जिसके सामने कायदे-कानूनका बधन, तत्र-मत्रका बधन, ससारके सारे बधन वैसे साबित होते हैं जैसे लोहेकी साकलके सामने सूतका धागा।

अ०—कहते तो हो तुम—यह बधन तोड़ा नहीं जा सकता, पर मेरा जी मानना नहीं चाहता। बताओ, तुम मेरे नहीं तो किसके होना चाहते हो? किसका तुमपर—

वि०—उसका जो रह-रहकर मेरी हृत्तत्रीके तारोमें झकार उठता है, 'आओ, मेरे अमृत पथपर आओ।'

अ०—(लिपटकर) बोलो, क्या मैं अपना यौवन-अमृत सदा तुम्हें पिलानेके लिये लालायित नहीं रहती?

वि०—इसी उलझनमें तो मैं पडा हू। इन दोमेंसे कौन-सा

प्रकृत अमृत है—यही मैं निर्णय नहीं कर पाता। जब तुम्हारी तरफ आंखें उठाता हू तब देखता हू, तुम्हारे अग-प्रत्यगसे अमृत चू रहा है; पर उस अमृतको पीते-पीते जब थक जाता हूं और तृप्ति नही मिलती तब मैं चिल्ला उठता हूं—कहा, कहा है वह अमृत। यही सग्राम मेरे भीतर दिन-रात समान रूपसे चला करता है।

(अजलिका जी भर आता है और वह रो पडती है।)

वि०—तुम रो रही हो? (लाडभरे स्वरमें) रोओ मत। देखो, अपनी दो बूद आसुओका बल देखो—उनसे एक धधकती हुई भट्टी बुझ गयी। वासनाकी ललकारके सामने वैराग्यने घुटने टेक दिये।

अं०—(विह्वल होकर) मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरा सोनेका संसार कोई उजाड़ने आया है। मेरे कलेजेको चीरकर मेरा गुप्त धन लेने आया है। (विजयके कधेपर सिर रखकर रोते-रोते) मेरे हृदयका पिजड़ा तोड़कर क्या तुम एक दिन—

(पासके घरके रेडियोसे गानेकी आवाज आती है। विजय क्षणभर सुनता है फिर अपने घरका रेडियो खोल देता है)

रे चेत कर जिसमें सफर, बेकार न हो जाय,
कल-कलमें आकर काल ही असवार न हो जाय।
शैशव उषाएं ढल चुकी, ढल लीं जवानियां,
यों जिन्दगीकी सांझ भी निस्सार न हो जाय।
मञ्जिल है बहुत दूर, पर दुष्टोंसे मग भरा,
दुविधामें यों ही उम्र कहीं पार न हो जाय।

मायाने जाल फेंककर, बेहाल जग किया,

तू पड़के उसके हाथ गिरफ्तार न हो जाय।

ज्वाला जला विरागकी, दे फूंक मोह को,

गफलतमें इस दफा कहीं फिर हार न हो जाय।

(अजलिको अच्छा नही लगता, वह रेडियो बद कर देती है।)

वि०–जाना मुझे कहा है? जा कहाँ रहा हू, करना मुझे क्या है? कर क्या रहा हू? (करबद्ध होकर) प्रभो! आंखोके आगेका पर्दा कब फटेगा, कैसे फटेगा?

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान–रजनीके घरका बरामदा

(प्रमोद और गोवर्धन)

प्र०–यही है उस विधवाका घर। इसपर यदि मेरा जादू चल गया तो जानो भाग जग गये।

गो०–व्यर्थमें तुम मुझे यहा घसीट लाये प्रमोद! न जाने कौन मुझसे कहता है 'यह ठीक नहीं है।' ना, इस पापमें मैं तुम्हारा साथ नहीं दे सकूगा।

प्र०–इस बेचारीका कोई नहीं है, इसे इसका हक दिलाना

पाप है तो पुण्य क्या है? एक असहायकी सहायता करना क्या अन्याय है?

गो०—पर विश्वासघात करना क्या न्याय है? जिसकी बदौलत आज मैनेजर बने बैठे हो उससे क्या कहोगे, उसे कैसे मुंह दिखाओगे? ना, मैं विजयकी पीठमें छुरी नहीं मार सकूंगा। मैं जाता हूं—

(प्रस्थान)

प्र०—बडा डरपोक है, तो भी एक बार जैसे हो इसे विजयके बड़े मुनीमके पास भेजूंगा। कहीं उसका मन डोल गया तो बस पौ बारह! (चौंककर) वह कौन आ रहा है, विजय! (देखकर) हां, वही तो है। सर्वनाश! वह यहां क्यों? जरा छिपकर देखूं, माजरा क्या है?

(छिप जाता है)

(विजय प्रवेश कर खडा-खडा कुछ सोचता है। अन्दरसे दरवाजा खोलकर दासी आती है।)

दासी—आपका नाम विजयबाबू है?

वि०—हां।

दासी०—चलिये, चलिये, भीतर चलिये। मालकिन बहुत देरसे आपकी राह देख रही हैं।

(विजय कोठरीमें प्रवेश करता है। पर्दा उठता है, सजे-सजाये कमरेमें रजनी दिखायी देती है।)

वि०—(आंखोंकी पलकें नीचे किये) आपने मुझे क्यों बुलाया है?

रज०–(मुसकराते हुए) एक अरजी पेश करनी है और देखना है कि जिसका हृदय इतना महान् है उसका प्राण कैसा है? आपने इतनी बड़ी रकम मुझे क्यो इनायत की है?

वि०–जिस जमीनमें अबरककी खान निकली है वह पहले आपके पिताकी थी। बहुत खोज करनेपर पता चला कि एकमात्र आप ही उनकी सतान है। उस धनमेंसे कुछ आपको देना अपना कर्त्तव्य समझकर ही मैंने आपके पास दस हजार रुपये भेजे थे।

रज०–आप यह सजा-सजाया कमरा देखते है, एक दीपकके बिना कहा रहेगी इसकी सुदरता–आज ऐसा ही हो रहा है मेरा जीवन। मेरा उपकार करना चाहते है तो वह दवा कीजिये जिससे मेरा रोग दूर हो–छातीपर क्लेशका जो पहाड पड़ा है वह हट जाय और जी हलका हो।

वि०–क्या मै जान सकता हू आपको किस बातका दु.ख है?

रज०–क्या मै जान सकती हूं आपमें मेरा दुख दूर करनेका साहस है?

वि०–यह दावा मै कैसे कर सकता हू, लेकिन–

रज०–लगाया 'लेकिन'–मै ऐसी कोई असाध्य वस्तु नहीं चाहती।

वि०–तो?

रज०–(मुसकराते हुए)तो–

(हाथ पकडना चाहती है। विजय उठकर खडा हो जाता है।)

वैठिये-वैठिये, मै आपको फासीपर लटकाने नहीं लगी हूं। जानते है आपके पिताकी धन-पिपासाने मेरे पिता-जैसे कितनोको मटियामेट कर

डाला है, कितनोंका जीवन धूलमें मिला दिया है?

वि०—मेरे पिताने? क्या किया है मेरे पिताने?

रज०—क्या किया है नहीं—पूछिये क्या नहीं किया है? यदि वे मेरे पिताकी जमीनकी कुर्की नहीं कराते तो मैं १२ वर्षकी एक नादान बच्ची ५२ वर्षके बुड्ढेके हाथ न बेच दी जाती और आज मेरे दिन बिलखते न बीतते। यदि मेरे पतिने सोचा होता कि पैसेसे वे मेरा शरीर खरीद रहे हैं, मेरा मन भी खरीद सकेंगे या नहीं तो मेरे दिन आज कलपते न बीतते।

वि०—फिर क्या हुआ?

रज०—वही हुआ जो ऐसे कर्मोंका परिणाम होता है—मेरे अदर प्रतिहिंसाकी अग्नि जल उठी और मैं अपने ममताहीन व्यवहारसे उनके रोग-शोकसे सतप्त शरीरको मौतके घाट उतारने लगी। दुःखसे भरी मेरी कहानी चुपचाप कैसे सुन रहे हो तुम! जरा तरस भी नहीं आता?

वि०—आप ही बताइये—मैं क्या कर सकता हूं?

रज०—(व्यग्यभरे स्वरमे) मैं रोऊं और तुम खडे-खडे तमाशा देखो।

वि०—नहीं, देवि, ऐसा न कहो। मैं तमाशा देखने नही आया हूं।

रज०—तो क्या करने आये हो?

वि०—तुम्हारी ज्वाला शात करने।

रज०—कैसे, घृण

वि०—नहीं, नहीं।

रज०—तो प्रेमसे?

वि०—आप नहीं जानतीं मै किस तरह बधा हूं।

रज०—किसने तुम्हे बाध रखा है?

वि०—धर्मने। (ऊपरकी ओर देखते हुए). धर्म! मुझे राह दिखा, इस आधीमें तेरा प्रकाश न बुझने पावे। देवगण! मेरा हाथ पकडकर इस अग्निपरीक्षासे मुझे निकाल ले चलो।

(रजनी खिसियाकर रोने लगती है।)

वि०—रोओ मत देवि! अपने नेत्रोके नीरमें मेरी सुख-शाति-को, यश-मानको बहा दो, पर मेरा धर्म न बहाना; प्रलोभनकी सजीव मूर्त्ति धारण कर मेरा धन-धाम, विषय-वैभव अपहरण कर लो, पर मुझे सत्यसे च्युत न करना। मेरे धर्मकी ध्वजा सदा फहराती रहे, उसपर कोई कलकका छींटा न पडने पावे; तुमसे यही प्रार्थना है।

रज०—(जलकर) धर्म-धर्म चिल्लाकर क्यों मेरी छातीमें भाले भोक रहे हो? पिताके पापका प्रायश्चित्त करना क्या धर्म नही कहाता?

(विजय हतबुद्धि होकर सोचने लगता है, क्षणभर बाद)

वि०—तुम्हारी निगाहमें मेरे पिता दोषी है, और उन्हे दोष-मुक्त करनेका एकमात्र उपाय है तुम्हारी पुत्रकामना पूरी करना। (घुटने टेककर) आजसे तुम हुई मेरी माता और मै हुआ तुम्हारा पुत्र। मेरी मां नहीं है, मैने मा पायी और तुमने

पाया पुत्र।

रज०–माता! ऊः!! (धमसे पृथ्वीपर बैठ जाती है।)

वि०–(इधर-उधर ताकते हुए) कौन कहता है "भाग विजय, भाग।"

(वेगसे प्रस्थान)

रज०–चला गया! हाय! ऐसा कोई पात्र नहीं जिसमें अपनी अगाध स्नेहराशि ढालू– (मूर्च्छा)

(प्रमोद बाहर आकर)

प्र०–नारी-जातिका इतना अपमान भारतभूमि ही सहन कर सकती है। (रजनीका सिर गोदमें लेकर) जो तुम्हे नहीं चाहता उसके लिये क्यो मरती हो–

(पर्दा गिरता है।)

चौथा दृश्य

स्थान–विजयके महलका बाहरी कमरा।

(विचार-निमग्न विजयका गुनगुनाते हुए प्रवेश)

"रात तारोंसे भरी है, घोर नीरवता बढ़ी है।
द्वारपर घोड़ा खड़ा है, हृदयमें बाधा बड़ी है;
शीघ्र दुविधा दूर हो, वह कौनसा संगीत गायें।"

प्र०–(विजयकी पीठपर जोरसे हाथ मारते हुए) मैं तुम्हें

बधाई देने आया हू विजय! आज तुम्हारी खुशीका क्या ठिकाना—

वि०—प्रमोद, सुनाऊ तुम्हे, कल मैंने स्वप्नमें क्या देखा है? देखा, कुछ काठकी पुतलिया आपसमें खेल रही हैं। कोई रानी बनकर प्रजाकी छातीपर पैर रखकर चल रही है तो कोई शक्ति-से सत्यको दबानेके लिये खूनकी नदी बहा रही है; कोई बबूलका बीज बोकर उसमें आम न फलनेके कारण पछाड़ खाकर रो रही है तो कोई मोती फेंककर ककड चुन-चुन बडे यत्नसे रख रही है। सब खेलमें ऐसी मशगूल है कि सध्या आ गयी, पर किसी-को खबरतक नहीं।

प्र०—विजय! तुम ऐसी-ऐसी फिजूलकी बातोके पीछे अपना सिर क्यो खपाया करते हो?

वि०—तुम क्या जानो, मेरे भीतर कैसी आधी चल रही है?

प्र०—यदि उस विधवाके यहा नहीं जाते तो न आधी चलती और न ओले पडते।

वि०—ओह! कैसा घोर सग्राम है। जबसे उस विधवाको देखा है, एक ऐसे कर्तव्यकी पुकार उठ खडी हुई है जो भगवान्-को ही मेरे जीवनसे हटा देना चाहती है। एक विवाहिता, विह्वला बालिकाको छोडकर कैसे जाऊं, जाया नहीं जाता।

प्र०—जब धनकी तुम्हे परवाह ही नहीं तो इन रुपयोसे किसीका उपकार क्यो नहीं करते?

वि०—इच्छा तो है कि एक गीता-भवन बनवाऊं।

प्र०—(मौका पाकर, दिल कडा करके मनकी बात कह डालता है)

दूसरोका हक मारकर, रोआं कलपाकर पुण्य बटोरना तुम्हें क्या शोभा देता है विजय?

वि०–(चकित होकर) किसका मैंने हक मारा है?

प्र०–(सकपकाकर) उस... ...उस... ...विध...वाका–

वि०–(उसे एक बार नीचेसे ऊपरतक ताककर) उस विधवाके लिये तुम्हारे दिलमें इतना दर्द कबसे पैदा हुआ प्रमोद? सावधान! इस रूपकी ज्वालामें पतगकी तरह कहीं फांद न पड़ना।

(रामा नौकरका प्रवेश)

रामा–पडितजीने कहलाया है कि जो महात्मा उनके यहां ठहरे हैं वे जाना चाहते हैं।

वि०–वे जाना चाहते हैं। जा, उन्हे बुला ला। नहीं, मैं ही जाऊं।

(जाना चाहता है, बडे मुनीम आ जाते हैं।)

मुनी०–आज रजिस्ट्रीका दिन है। कचहरी जानेका समय हो गया, आप जा कहां रहे हैं?

वि०–अभी आया।

(प्रस्थान)

मुनी०–बाबू कहा गये?

प्र०–एक महात्मासे मिलने।

मुनी०–(आश्चर्यसे) डेढ लाख रुपया छोड़कर!

प्र०–इस बेवकूफीकी भला कोई हद है! मुनीमजी! मैं एकातमें जरा आपसे कुछ बाते करना चाहता हूं।

मुनीम–(वक्रदृष्टिसे ताकते हुए) एकांतमें! क्यों? तुमने मेरे लडकेके द्वारा क्या कहलाया था? पैसेके लिये तुम इतना नीचे उतर सकते हो? ऐसे पापका पैसा फला है? चल दो यहांसे। फिर कभी यहा पैर रखा तो खैर नहीं। जाओ, इसी क्षण चले जाओ।

(प्रमोद जहरीले साप-सी नजरसे ताकते हुए चला जाता है। दूसरी ओरसे अजलिका प्रवेश)

अं०–मुनीमजी, दरवाजेपर रो कौन रहा है?

मु०–रो रहा है? जाकर देखू। (प्रस्थान)

(रामाके साथ एक किसानका प्रवेश)

किसा०–सरकारके जमादार बडी मार मरलछ। (रोता है)

अं०–मेरे जमादारने मारा है! क्यो? रामा, बुला तो उसे।

(रामाका प्रस्थान और जमादारके साथ प्रवेश)

जमादार, तुमने इसे मारा है?

जमा०–तीन सालके लगान मार खायकेउ बेटवा–

अं०–बाबू सुन पायेंगे कि उनके नामपर तुमने यह अत्याचार किया है तो उनकी आखोसे खून निकल पडेगा।

जमा०–हम तो रावरे खातिर–

अं०–अभी, अभी चले जाओ मेरे सामनेसे। रामा, ज़ा, मुनीमजीसे कह दे कि फाटकपरके जमादारके साथ इसकी बदली कर दें और किसानका लगान माफ कर दें। सुन, और कह देना, यह घटना बाबूके कानोतक पहुंचने न पावे।

किसा०—(जाते-जाते) दूधो नहायं, पूतो फले।

(प्रस्थान)

अं०—वे आ रहे हैं। जरा सुनू, क्या बाते करते हैं। (छिप जाती है)

(बाते करते हुए विजयका एक महात्माके साथ प्रवेश)

महा०—शातिका मकरंद तो रहता है साधनाके फूलमें और मनुष्य खोजता है उसे विषयोकी धूलमें—तो वह कैसे मिले? पर तुम घबराओ मत। तुम्हारे जीवनके पट-परिवर्तनका समय बहुत निकट आ गया है।

वि०—जीवन मुझे उस पुस्तक जैसा लगता है जिसके दो भाग हैं, कही पहले भागमें ही अटका न रह जाऊं, मै सदा यही सोचा करता हू।

महा०—कुछ मत सोचो—तुम जो कुछ करना चाहते हो, उसे एक तरफ रख दो और गीताके अर्जुनकी तरह यह जाननेकी चेष्टा करो कि भगवान् तुमसे क्या कराना चाहते हैं, उन्होंने तुम्हारे लिये क्या निर्धारित किया है।

(मुनीमजीका पुन प्रवेश)

मुनी०—बस, एक घंटा और समय रह गया—

वि०—ओ! (महात्मासे) मेरी बड़ी इच्छा है कि आप यहीं रहे। आज्ञा हो तो सारा प्रबंध करवा दू।

महा०—प्रबध! जो जगत्का प्रबध करता है वह क्या मेरा प्रबध करना भूल जायगा? वत्स! उसके आगे हाथ पसारकर अब किसके आगे हाथ पसारू?

अ०–(वाहर आकर) तो हम गृहस्थोका उद्धार कैसे होगा ? (विजयके निकट जाकर) कोर्टमें जाना भी तो जरूरी कामोमेंसे है ?

वि०–(चौंककर) हा, हा, (महात्मासे) मेरी पत्नीको जरा–

(प्रस्थान)

(अजलि घुटने टेककर महात्माको प्रणाम करती है।)

महा०–(हाथ उठाकर) पुत्रवती भव !

ऐं ! हठात् आज मुखसे–

(विचारते हुए प्रस्थान)

अं०–संतान ! मेरे भाग्यमें संतान है !

(दामोदर प० का प्रवेश)

पडितजी ! उनके मनकी अवस्था देखते है–जो आग प्रति-क्षण लहक रही है उसे मै मुट्ठीसे राख फेंक-फेंककर कैसे दबा सकती हू ?

दामो०–विलासके जलमें मक्खनके गोलेके सदृश जिनका मन नहीं डूबता, बेटी, संसारमें ऐसे कितने पुरुष है ? तुम तो बडी सौभाग्यशालिनी हो जिसने ऐसा प्रभुपरायण, परोपकारी पति पाया है।

अ०–मै मानती हू–हर काममें उनकी सहायता करना मेरा धर्म है, पर अपना ससार अपने हाथो उजाडनेमें उनका साथ कैसे दे सकूगी महाराज ?

दामो०–जिसे तुम्हारा पति स्वधर्म कहकर स्वीकार कर ले उसमें उसका साथ देना ही तुम्हारा धर्म है। स्त्री पुरुषकी शक्ति है, वह चाहे तो पतिकी सहायक बनकर उसकी शक्ति द्विगुणित

कर सकती है अथवा बाधक बनकर उसकी शक्तिका ह्रास कर सकती है। जिस महान् पथपर तुम्हारा पति चलना चाहता है उसमें उसकी सहायक बनोगी या बाधक, चुन लो।

(विजयका पुन प्रवेश)

वि०—कौन! पडितजी? बडे मौकेपर आये। अजलि! लो यह चेक। (चेक देता है।)

अ०—फिर इसे वापस तो नहीं लोगे?

वि०—अच्छा, नहीं लूंगा, पर बदलेमें मुझे—

अं०—क्या कहा—बदलेमें तुमको? आग लगा दो इस चेकमें—

(चेक फेककर प्रस्थान)

दामो०—(विमुग्ध होकर) यह है भारतकी नारी—भारतकी यह वह नारीजाति है जिसके सामने ससार श्रद्धासे शीश झुकाता है।

वि०—रूपसे नहीं, इन्हीं गुणोसे इसने मुझे बाध रखा है। आत्म-ससर्पण शास्त्रोसे नहीं, इन स्त्रियोंसे सीखना चाहिये। आहा! यह हृदय यदि भगवान्का होता!

दामो०—मेरी एक बात मानोगे विजय? मै जानता हू, सुकृतके बड़े भारी कोषाधिकारीके हृदयमें ही वैराग्यकी ऐसी ज्वाला जल उठती है; परंतु जबतक अंजलिकी कोई संतान न हो जाय तबतक तुम उधर पग मत उठाना।

विं०—यह क्या मेरे वशकी बात है?

दामो०—भगवान्से प्रार्थना क्यों नहीं करते?

वि०—प्रार्थना करूं संतानके लिये? —हिलेगी जिह्वा?

दामो०–अच्छा, एक अवधि बाध लो।

वि०–एक वर्ष।

दामो०–नहीं, तीन वर्ष।

वि०–और तीन वर्ष यहीं सडना पड़ेगा! हरि-इच्छा। चलिये भीतर चले।

(दोनोका प्रस्थान)

(आकाशमें विवेक-वैराग्यका प्रवेश)

विवे०–रोक लिया मैंने। देखा, घाव अभी कच्चा है।

वैरा०–ठीक है। पका आम डालपर लगा रह सकता था?

पांचवां दृश्य

स्थान–गोवर्धनका घर

(गोवर्धनके पीछे-पीछे तमकते हुए भामाका प्रवेश)

भामा–नित्य उठ 'चला जाऊँगा, चला जाऊँगा', जाते क्यों नहीं? –अभी चले जाओ। पेटके लिये टुकडे तो साधु बननेपर भी मागने ही पडेंगे।

गो०–आज तो तुम आगपर चढे तवेकी तरह तप रही हो।

भामा–रोजकी धमकी–जाते क्यो नहीं? जाओ चले।

(गोवर्धनके लडके आ जाते हैं।)

गो०–(एकको खीचकर) बेटा चट्टू! जाऊँ चला?

चट्टू–(लिपटकर) नहीं। मैया मालेगी तो कौन बचायगा?

गो०—(चद्रूका मुख चूमकर) चद्रू मुझे जाने नही देता, नही तो मैं अभी चला जाता।

भामा—तुम्हारे जैसा बेशर्म मर्द मैंने कहीं नही देखा।

गो०—तुम्हारी जैसी झगड़ालू औरत मैंने कहीं नहीं देखी।

भामा—(गालपर हाथ मारकर) लो मैं झगड़ालू हू। बैठा-बैठा खायगा और लंबी-लंबी बाते बनायगा; अपने बापके घरसे चीज़ें ला-लाकर इसकी गृहस्थी चलाती हूं, तिसपर इस कलमुंहेको देखो—कहता है मैं झगडालू हूं। (हाथ चमकाकर) अपनी माताकी कोखमें तुम क्या पत्थर पैदा हुए थे? मेरे मां-बापकी आखोमें क्या छाले पड गये थे? तुम्हारे जैसे मर्दके बजाय तो मैं बिना मर्दके सुखसे रहती। चल चद्रू।

(चद्रू-नद्रू आदिको खीचते हुए प्रस्थान)

गो०—यहातक! ना, चल दू अब—और कबतक आंसू पी-पीकर दिन बिताऊंगा।

(चित्तको व्यथित होते देख, रुककर)

प्राण! घर छोड़नेके नामसे तू क्यो रोता है? घरमें तेरा कौन है? जब वह नागिन बनकर तुझे डसने दौडती है तो उसे छातीसे लगानेके लिये रे! क्यो मरता है? ना, इस जिन्दगीमें उसका मुंह कभी नहीं देखूगा। चल दू—

(जाना चाहता है। एकाएक रुककर देखते हुए)

वह कौन? प्रमोद! मेरे घर!

(प्रमोदका प्रवेश)

प्र०–मेरी नौकरी चली गयी गोवर्धन। चले गये मैनेजरीके वे सुनहले दिन–कालके पखपर चढकर सुख आया और फुरसे उड़ गया।

गो०–कहा था न–अधिकार पाकर मत ऐंठो!

प्र०–हा! अधिकार पाकर नहीं ऐंठता तो आज यह नौबत क्यो आती? जिसका नमक खाता था उसके गलेपर छुरी चलाने नहीं जाता तो यह नौबत क्यो आती? पिशाचिनी लालसा सुरसा-सा अपना शरीर बढाती हुई मेरे पीछे नहीं पडती, हा-में-हा मिलाने-वाला पियक्कड ड्राइवर नहीं मिलता तो नाकसे आग फेंकने-वाले घोडेकी तरह मै अपने सर्वनाशकी ओर क्यो दौड पड़ता और आज यह नौबत क्यो आती? सोचा, सवारीकी जान ड्राइवरके हाथोमें रहती है, जरासा उसके हिम्मत करते बस–

गो०–(बीचमे ही) सोचा कि चिरागपर हाथ धरते ही लौ बुझ जायगी। जरा बुद्धिसे तो काम लिया होता?

प्र०–उस वक्त बुद्धिको सोचनेकी फुरसत कहा थी! लालसाने कहा, इस कटकके दूर होते ही मालिकके नाबालिग लडकेको अपनी ढाल बनाकर, उसके नामपर अपनी प्रभुताकी तलवार खुलकर चलानेके लिये मैदान एकदम साफ मिलेगा। अपने सम्मुख अपने भविष्यको खिलखिलाकर हसते देख मन मोरकी तरह नाच उठा। मै क्या जानता था कि एक अदना-सी बातपर तनककर ड्राइवर, मालिक-से जा मिलेगा और मेरे कलेजेपर गोली दगवा देगा। ओह! मनुष्य क्या साप-बिच्छुओंसे भी भयानक होता है?

गो०—तुम कहते हो यह, तुम! (प्रमोदको अपनी बात बुरी लगते देख, बातका रुख पलटकर) मुझे ताज्जुब होता है, तुम्हें यह यकीन कैसे हो गया कि ड्राइवर तुम्हारे लिये अपनी जान जोखिममें डाल देगा।

प्र०—उसकी जान कैसी? वह तो मैंने खरीद ली थी।

गो०—ओह! यह बात है! मगर तुम्हे जानना चाहिये—रुपयेसे जान खरीदी नहीं जा सकती।

प्र०—रुपयेसे क्या नहीं खरीदा जा सकता, क्या नहीं किया जा सकता? तुम क्या जानो इस षड्यंत्रके भीतर किसका हाथ था। धूर्तोंके सरदार उस असिस्टेंट मैनेजरके कहनेसे मालिकका खून खौल उठा होगा—बस, बात-की-बातमें उड़ा दिया गरीबका सिर धडसे। (खीजकर) ये पैसेवाले जरा हृदयवान् होते—सोचते तनिक कि उनके तलवेके नीचे रहनेवाले भी मनुष्य है, गधे-घोडे नहीं कि चाबुक खाते जाय और उफ न करें; कीड़े-मकोड़े नहीं कि पंख हिलाते कुचल दिये जायं। इस पृथ्वीपर मनुष्य नहीं, केवल धूर्त, धोखेबाज ही बसते है।

गो०—नही, जिनके पास पैसे है, वे ही रईस है, उनमें ही सब गुण है, जिनके पास पैसे नहीं, उन्हे धूर्त कहो, धोखेबाज कहो, सब दुर्गुण उनमें है। चलो, इन रईसोकी दुनियाको लात मारकर भाग चलें।

प्र०—भागकर कहा जायेंगे—इसी दुनियामें रहना होगा और इसीका भारी जूआ ढोना होगा।

गो०—ना, बहुत ढोया, अब नहीं ढोऊंगा। इसे फेंककर अब मैं उस दुनियामें जाऊंगा जहां साधुओंका राज्य है, उन्हींका प्रताप और प्रभुत्व है।

प्र०—इस पृथ्वीपर अब साधु नहीं रहे।

गो०—तुम कहते हो साधु नहीं रहे, मैं कहता हूं, वे नहीं रहते तो पृथ्वी कबकी नेस्तनाबूद हो गयी होती।

प्र०—रहा करे, उससे मेरा क्या? आवें कोई, दिलावें मुझे मेरी नौकरी तब मैं जानूं।

गो०—जीवन क्या नौकरीमें ही पिसते रहनेके लिये मिला है?

प्र०—(अपनी विवशता याद करके) लातें खाकर भी आंखें नहीं खुलतीं, क्या करूं! रुपयेंने मुझे कैसे-कैसे नाच नचाये, पिशाचसे भी अधम बनाकर छोड़ा, फिर भी मैं देखता हूं कि जितना वह भागता है, उतनी तेजीसे उसके पीछे दौड़नेकी आकांक्षा जागती है, तृष्णा नहीं छूटती क्या करूं! मैं जानता हूं, इसके आकर्षणमें सर्पोंके दंशनकी पीडा है, तो भी मन नहीं हटता, क्या करूं!

गो०—नहीं हटता तो यहीं रहो और जीते जलो।

प्र०—(विषण्ण होकर) रह-रहकर इच्छा होती है कि सिर कूट लूं। (चूर होकर) अच्छा, जाता हूं गोवर्धन!

गो०—किधर आये और बिना कुछ खुले चले जा रहे हो।

प्र०—जी जलकर खाक हो रहा था, तुमसे दो बातें कर जी हलका करने चला आया था। चारों तरफसे आगकी लपटें उठ

रही है। भाई साहब जानके गाहक बने बैठे हैं, रजनीका एक दूरका संबंधी अपनी छुरीमें सान धरा रहा है, दौलतराम रुपये-के लिये सीनेपर सवार हैं—इच्छा होती है कहीं भाग जाऊं, कभी इच्छा होती है गलेमें डोरी डालकर लटक जाऊं।

गो०—अरे, नाहक जिन्दगीके दुश्मन क्यो बनते हो? इस दुनियासे निराश हुए हो, मारो इसे झाड़ू; आओ, जिस रास्तेपर मैंने पग उठाया है उसीपर तुम भी चल पड़ो। पर मेरी बाते सुहायेंगी तुम्हें—करोगे मेरा कहा?

प्र०—हां, आज अवश्य करूंगा।

गो०—चलो, हम तुम मिलकर साधु बन जायं।

प्र०—(स्तभित होकर) साधु! साधु बनूंगा मुखमें कालिख पोतकर! जीवन-युद्धसे भागकर! इस तरह भी कोई साधु बन सकता है—बन सकता है गोवर्धन? साधु बनते है कौन? जो भगवान्के भूखे हैं। मेरे ऐसे दमबाज, धोखेबाजको—ना, ना, तुम जाओ। मुझसे यह नहीं हो सकेगा।

गो०—सो तो मैंने पहले ही कहा था।

प्र०—तुमने मेरी आखोके आगे एक नयी दुनिया खोल दी गो-वर्धन! (सोचता है) चल दू—चल दूं सब फेंक-फांककर, इस तरह कुढ़-कुढ़कर दिन बितानेसे तो... लेकिन टुकडोके लिये भिख-मंगोंकी तरह—ना-ना, इससे तो जहर खाकर मर जाना कहीं अच्छा है।

गो०—(तनककर) क्या कहा, भिखमंगोकी तरह? जिस

साधुपर नजर पडते इद्र ऐरावतसे उतर पडता है, राजा सिहासन छोडकर खडा हो जाता है उसकी तुलना तुम समाजके कूडे-भिखमगोंसे करते हो? नमस्कार है तुमको।

(चिढकर प्रस्थान)

प्र०–यह तो मै नहीं जानता था–दु.ख-द्वंद्वोंसे छुटकारा पानेका यह भी एक उपाय है–

(चिंतित भावसे प्रस्थान)

(आकाशमें विरक्तिका अट्टहास)

छठा दृश्य

स्थान–विजयका घर

(विजय और भवेश)

भवे०–इतनी सेवा-शुश्रूषा! मुझे बचानेके लिये? किसी तरह, किसी मोटरसे दबकर प्राण गवानेकी इच्छासे ही तो मै अधेरे रास्ते में जाकर पड गया था।

वि०–कीडे-मकोडे भी स्वेच्छासे मरना नहीं चाहते। आप तो–

भवे०–मेरे जैसे पढे-लिखे युवकोकी आजकल यही दशा है। आप कीडे-मकोडेकी बात कहते है–वे अपना पेट तो पाल ही लेते है। मै उनसे भी गया-गुजरा हू।

वि०–(पाच नोट निकालकर देते हुए) लीजिये। इन रुपयोसे कोई व्यापार कर यदि आप अपने पैरोपर खडे हो सके

तो मुझे हर्ष होगा।

भवे०—एं! ५००) रु०! मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं! आप जैसे दूसरोंकी आंखोंके आंसू पोछनेवाले, बिलखते ओठोंपर हंसी दौड़ानेवाले उदार पुरुष ही यदि पृथ्वीपर होते! (करबद्ध होकर) अब जानेकी आज्ञा हो।

वि०—हां, आप जा सकते हैं।

(भवेशका प्रस्थान)

आज अंजलिसे स्वीकृति लेनी है; बड़ा कठिन कार्य है यह। यदि वह सुनते ही पछाड़ खाकर गिर पड़े! (अपने ऊपर क्रोध करके) और कबतक पोसता रहूंगा मैं इन दुर्बलताओंको—ना, और नहीं। बुलाऊं उसे। दासी! (रुककर दूसरी आवाज) दासी!

(अंजलिका प्रवेश)

वि०—मैंने तो दासीको पुकारा था?

अं०—दासी ही तो सामने हाजिर हुई है। हुक्म?

वि०—जो हुक्म होगा उसको सहर्ष पालन करोगी तो?

अं०—दासीका और काम ही क्या है?

वि०—(जो कहना चाहता था उसे न कहकर) तुम अपनेको दासी क्यों समझती हो?

अं०—तो क्या समझूं?

वि०—रानी।

अं०—मैं रानी बनना तभी स्वीकार कर सकती हूं जब तुम

मेरा शासन स्वीकार करो।

(विजय अजलिका मुख ताकने लगता है।)

अ०—क्यों, चुप क्यो हो गये?

वि०—तुमने तो मेरी बोली ही बंद कर दी।

अ०—(मुसकराकर) हो गये गिरफ्तार?

वि०—गिरफ्तार हुए तो १४ वर्ष बीत गये; अब तो उस कैद-से छुटकारा पानेका समय आ गया है।

(अजलिके होश उड जाते है।)

अ०—हाय! जो भय था सो होकर रहा। हृदयमें प्रलय मच रहा है। (अजलि गिरना चाहती है, विजय पकड लेता है।)

वि०—तुम इतनी अधीर होओगी, तो कहो मैं अपना धर्म कैसे निभा सकूगा? प्रिये! जीवनका चरम लक्ष्य क्या अच्छा खाना, अच्छा पहनना बस यही है? ऐसा हेच मन कुछ महान् कर सका है? तुम चुप हो? —फूलोकी सेजपर जब तुमने मेरा साथ दिया है तब क्या काटोकी सेजपर साथ देनेसे पीछे हट जाओगी?

अं०—ऐं! पीछे हट जाऊगी?

वि०—क्या तुम सदा बकरी-सी बनी रहोगी? जानती हो राजस्थानकी वीर ललनाए किस प्रकार अपने पति-पुत्रको प्रमुदित चित्तसे विजय-तिलक देकर रणमें भेजती थीं? क्या तुम उसी प्रकार साहस दिखाकर मेरा मन, बल और उत्साहसे नहीं भर सकतीं?

अ०—रे प्राण! तू तनसे निकल क्यो नही जाता?

वि०—काल क्या प्रिये! सदा हम लोगोको साथ रहने देगा? एक दिन जुदा तो होना ही पड़ेगा, फिर किसी महत् कार्यके हित क्यो न जुदा हो?

अं०—प्राणेश! तुम्ही बताओ तुम्हारे बिना मैं कैसे जीऊंगी, किसका मुख देखकर कलेजा थामूगी?

वि०—भगवान्‌का। आजसे तुम मेरी नहीं उनकी—

अं०—(विह्वल होकर, विजयके मुखपर हाथ रखकर उसे ऐसा कहनेसे रोकते हुए) नहीं, नहीं, ऐसा मत कहो—और चाहे जो कहो, पर 'तुम्हारी नहीं' ऐसा मत कहो।

वि०—(पिघलकर) ओह! (उसका दुःख देख न सकनेके कारण मुख फेर लेता है।)

अं०—(क्षोभसे) क्या?—आज मैं तुम्हारी नजरमें इतनी हेय हो गयी?

वि०—नहीं, नहीं, सूखे पत्तोके ढेरमें तुम लाल हो; मेरे गृहमें स्वर्गीय सुमन हो।

अं०—तो मुझे इस तरह अथाह जलमें फेंककर क्यो जा रहे हो?

वि०—अथाह जलमें? यह क्या कह रही हो अंजलि? एक सामान्य मालिक जब अपने आश्रितोंको नहीं छोडता तब मालिकोंका मालिक क्या अपने आश्रितोके आश्रितको छोड़ देगा? प्रिये! अब मेरी इच्छा पूरी करो, मुझे भिक्षा दो।

अं०—भिक्षा? नहीं, मुझसे यह नहीं हो सकेगा। मेरी आखें मांगो, मेरा कलेजा मांगो, मेरे सारे शरीरका रक्त मांगो, मैं अभी

दे दूगी, लेकिन, लेकिन तुम्हे . . .तुम्हें (सिरपर हाथ मारकर) हाय ! मुझे अपने सौभाग्य-सुखका बडा गर्व था। (गिरना चाहती है)

वि०-(अजलिका स्कध सहलाते हुए) मुझे पूरी आशा थी कि तुम्हारे हसते मुखसे 'हा' सुनकर प्रस्थान करूगा। (उसके केशोपर हाथ फेरते हुए) प्रियतमे! तुम-जैसी सर्वगुणसंपन्ना पत्नी पाकर भी मेरी यह साध मनमें ही रह जायगी?

अ०-(सिर झुकाकर सोचती है) जो स्त्री पतिके सुख-की उपेक्षा कर अपना सुख ढूढती है वह क्या व्यर्थमें प्रेमका दम नहीं भरती? किंतु. . . किंतु . . . जीवनभर तिल-तिल सूखना! धीमे-धीमे सुलगना!

(सामने पिताको आते देख रुका हुआ वेग उमड पडता है और वह जोरसे रो पडती है। उसके पिता कैलाशनाथका प्रवेश)

कैला०-तब, जो कुछ मैंने सुना वह सच है? अजलिके सिवा मेरा और कौन है? दुनियामें मै और कै दिन हूं? इतनी बडी संपत्तिका उपभोग कौन करेगा? मै सब कुछ आज ही तुम्हें सौंपता हू, विजय, मत जाओ।

(उत्तर देना अनावश्यक समझकर विजय चुप रहता है।)

कैला०-तुम्हारे सिरमें यह पागलपन कहासे घुस गया? कुछ करना चाहते हो तो देशके लिये ही कुछ क्यो नहीं करते? निष्काम कर्ममें ही तो भगवान् है?

वि०-'कुछ यह भी सही, कुछ वह भी सही' की बँटी हुई वृत्तिसे कुछ किया जा सकता है? जबतक अहकार नसोमें खूनकी

तरह् वह रहा है तबतक कर सकता है कोई निष्काम कर्म? ज्ञानका बल ही बल है, बिना वह बल प्राप्त किये कोई किसीका दुःख मिटा नहीं सकता।

कैला०—दूसरोका दु:ख मिटानेकी बात तो तुम सोचते हो पर एक नादान बच्ची, तीन महीनेके अबोध बच्चेके प्रति क्या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है?

वि०—(दृढ स्वरमें) हजारो कर्त्तव्योकी पुकार एक तरफ और भगवान्‌की पुकार एक तरफ। भगवान्‌की पुकार सबसे ऊपर है पिताजी!

कैला०—(अजलिकी ओर दिखाकर) इन आंसुओकी झड़ीमें तुम्हारी गीता बह नहीं जाती?

वि०—मेरी गीताको बहानेकी अब उसमें शक्ति नहीं रही।

कैला०—ऐसा पत्थर-सा हृदय तो मैंने तुम्हारा कभी नहीं देखा था। उसे मैंने जब तुम्हे सौंपा था तभी क्या अपना हृदय निकालकर नहीं दे दिया था? मैं क्या जानता था कि तुम उसकी छातीमें कटार मारकर निकल भागोगे? बेटी! तुझे इतना कष्ट!

अं०—मेरे स्वामीका जीवन मधुर है, वचन मधुर है, चरित्र मधुर है। निर्दय होकर तो वे मुझे त्याग नहीं रहे है।

(गला भर आता है, सिसकिया बध जाती है।)

कैला०—आहा! ऐसा रत्न। विजय! तुमने इसकी कदर नहीं की।

वि०—हा, मैं इस योग्य नहीं निकला—इसलिये इसका उपयोग—

कैला०—(कुढकर) नालेमें फेंककर किया है।

विo—(तर्क करना व्यर्थ जान, हाथ जोडकर) आशीष दीजिये—

कैला०—मैं वृद्ध हूं, मैं करबद्ध प्रार्थना करता हूं—

वि०—मैं घुटने टेककर भिक्षा मागता हूं मुझे आज्ञा दें। मुझे ऐसा लगता है कि भगवान्के बिना जीवन, जीवन नहीं—मृत्यु है।

कैला०—अजलि कहे तो जाओ।

वि०—(एक अर्थपूर्ण दृष्टिसे ताककर) अंजलि!

(अजलिकी आखोसे आसू झरते है।)

तुम अब भी चुप हो। लो, जबतक तुम नहीं कहोगी मैं नहीं जाऊगा।

अ०—(आकाशकी ओर आखें उठाकर) मा दुर्गे! पतिके सुखके लिये लोहेके ढक्कनद्वारा खौलते पानीसे उठते वाष्पोको तरह अपने भावोको रोक देनेकी मुझमें शक्ति दे! (विजयसे) तुम्हारा सुख ही मेरा व्रत हो, यही मेरी साधना हो, यही मेरी तपस्या हो! तुम्हारी इच्छा ही मे...री....इच्छा...(विलाप)

वि०—प्रिये! तुमने मेरी छातीपरसे एक पर्वतका बोझ हटा दिया। आज मैंने जाना कि हमारा और तुम्हारा शरीर दो हैं, पर मन और प्राण एक। हृदय तुम्हारे गर्वसे फूला नहीं समाता। (कैलाशनाथसे) अच्छा, विदा (वह रो पडते है। उनके रोनेकी आवाज सुनकर दास-दासिया आ जाती है और सब रोने लगती है।) प्रियतमे विदा!

(अजलि धडामसे पृथ्वीपर गिरती है।)

वि०—ओह! पैरोने मानो चलनेकी शक्ति खो दी। मन! तुम चुप रहो। आंखें! तुम उधर ताकोगी तो तुम्हे निकालकर फेंक दूगा।

(वेगसे प्रस्थान)

(आकाशमे विवेक-वैराग्यका प्रवेश)

वैरा०—चलो, इसे अब किसी योग्य गुरुसे मिलावे।

(पट-परिवर्तन)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान–मायापुरी

(माया)

माया–शाबाश वासना! तूने सभीको फँसा पगु बना रखा है! सब कैसे मेरी गोदमें खर्राटे भरकर सो रहे है–किसीको करवट बदलनेतकका होश नहीं है।

(सशयका प्रवेश और अभिवादन)

माया–तुम अभी क्यो आये? कोई खबर है?

स०–(डरते हुए) राज्यसे महारानी–

माया–राज्यसे क्या? स्पष्ट क्यो नही कहते?

स०–राज्यसे तीन व्यक्ति निकल भागे है महारानी!

माया–क्या कहा? –तीन व्यक्ति निकल भागे है? विद्रोही बनकर? कहा है वासना? कहा है अहकार? बुलाओ उन्हे।

स०–विवेक, वैराग्य–

माया–(पैर पटककर) मैं कुछ सुनना नहीं चाहती। जाओ। अभी जाओ।

(सशयका प्रस्थान)

(गभीर होकर) मैं देखती हूं, रज जसे यूरोपको उदरस्थ कर सका है तम वैसे भारतको नहीं कर पाया। जब तब यहा-से भूमि फाडकर सत्त्व ऐसा दमक उठता है कि दुनिया उसके तेजसे स्तब्ध हो जाती है। ना, मैं इसे सहन नहीं कर सकती। मेरी गवर्नमेंटकी पॉलिसी ही यह है कि सभी कोल्हूमें जुते बैल-की तरह सीमाके अदर चक्कर काटते रहे। कोई–

(वासनाका प्रवेश)

वा०–महारानीने मुझे बुलाया है?

माया–(तिर्छी नजरसे ताकते हुए व्यग्यपूर्ण स्वरमे) बुलाया है!

वा०–(भयभीत होकर) क्या आज्ञा है महारानी?

माया–तुम जानती हो?

वा०–क्या महारानी?

माया–इस 'क्या' का उत्तर मुझे ही देना पड़ेगा?

वा०–जिस बातकी महारानी मुझसे कैफियत तलब कर रही है, हम लोग उसीका उपाय सोच रहे थे।

माया–खाक सोच रहे थे!

वा०–धृष्टता क्षमा हो। महारानी! इस पारको छोडकर चल देनेसे ही क्या हुआ? बीचमें दिगंत-विस्तृत समुद्र जो है?

माया–मेरी सुरक्षित भूमिको छोड़कर कोई समुद्रमें पाल उडावे,

मैं इसे सहन नहीं कर सकती।

वा०—पाल उड़ानेसे ही क्या कोई उस पार पहुंच सकता है?

माया—तुरत न सही, पर एक दिन पहुच ही जायगा।

वा०—महारानी! जिसके भीतर हजारो प्रकारकी अतृप्तियां और कुप्रवृत्तियां 'दो, दो' कर चिल्ला रही है उसके पैर साधनाकी धधकती आगपर कितने दिन टिक सकेंगे? और यह मैं दावेके साथ कह सकती हू कि उनमेंसे दो तो मेरी फूकसे फूसकी तरह उड जायेंगे।

माया—और तीसरा?

वा०—उसके सीनेपर भी मैं पूरी शक्तिके साथ सवार हू, पर ऐसी दबी रहती हू—उसके परमार्थ, परोपकार आदि कर्मोंके बोझसे ऐसी दबी रहती हू कि कुछ कर नहीं पाती।

माया—(तीखे स्वरमे) कुछ कर नहीं पाती थी तो सेनापति क्या मर गया था? उसे क्यो नहीं बुलाया?

वा०—जिस दिनसे, जिस क्षणसे उसकी चेतना जगी है, जी-जानसे हम लोग उसके पीछे पडे है, पर न जाने किसका हाथ उसे गर्त्तमें गिरने नहीं देता। अतमें वैराग्य—

माया—(डपटकर) चुप रहो। सुन चुकी। कहा है मत्री? वह क्या मत्रित्व पाकर—

(अहकारका प्रवेश)

अह—मत्रित्व पाकर अहकार राजधानीमें चादर तानकर सो

नही रहा है महारानी! यदि उसमें इतनी क्षमता नहीं होती तो एक कोनेमें बैठकर वह विश्वको मायाके चरणोमें लिटा नही सकता! आप क्या जानें किस तरह वह सारी-सारी रात राज्यकी चिंता करता हुआ आंगनमे चक्कर लगाया करता है।

माया–इतनी चिंता थी तुम्हे राज्यकी, तो वैराग्य कैसे सफल हुआ?

अहं–कौन कहता है कि सफल हुआ? मायाका राज्य कहा नहीं है? क्या घर-बार छोड़ गिरि-कंदरामे छिप जानेसे कोई मायाके हाथसे निस्तार पा सकता है?

माया–(खुश होकर) हुं।

अहं–भागें, भागकर वे कहां जायेंगे? उनके रोम-रोममें रग-रगमें मै ऐसे समाया हुआ हूं जैसे हड्डीमें चूना, भापमें पानी।

माया–तो वे त्यागी बननेका प्रण कैसे कर बैठे?

अहं–प्रण! प्रण महारानी? (व्यंग्यसे हसकर) यह बिल्लीका मास खाना छोड़नेका प्रण है।

(सशयका प्रवेश)

क्या समाचार है संशय? सेनापति कहां है?

संश०–वह अपनी सारी सेनाके साथ विद्रोहियोपर टूट पडे है। प्रत्येक सैनिकको यह परवाना दिया गया है कि जो जिसे जहां पावे फौरन गिरफ्तार कर ले।

अहं–नहीं–कहो जिसकी जैसी प्रवृत्ति है उसके पीछे वैसा चर लगावे। गोवर्धनके लिये कुमतिको भेजे। और प्रमोदके लिये

(सोचता है)–लाखो वासनाएं लक्ष्यशून्य होकर उसके भीतर लाखों तरफ दौड रही है,–उसके पीछे कहो लोभको उसके लशकरके साथ भेजे। जाओ।

(सशय चला जाता है)

(पुकारकर) सशय! सशय! सुनो, कुमति जब गोवर्धनको गिरफ्तार कर ले आवे तो उसे भ्रातिनगरके जेलखानेमें ठूस देना और छ· महारथियोसे कहना कि वे खुली तलवार लिये चौबीसो घटे पहरेपर तैनात रहें। जाओ।

माया–और विजयके लिये क्या सोचा है?

अह–यहीं समस्या जरा जटिल हो उठी है। कोई उसे अटका नहीं सका। मोह कुछ सफल हुआ था और ऐसी आशा हो चली थी कि वह अजलिका स्नेह-पाश तोडकर भाग नहीं सकेगा; पर गीताने वैराग्यकी ज्वाला जला उसका सारा स्नेह जला डाला।

माया–(चिढकर) तुम्हें तो नहीं जलाया?

अह–यदि मुझे जलाता तो महारानीके सिंहासनका राजछत्र भी जलकर खाक हो जाता।

माया–तुम जानते हो–किसके सम्मुख खडे होकर बातें कर रहे हो?

अह–(अकडकर) विश्व-ब्रह्मांडको विमोहित करनेवाली महारानी मायाके सम्मुख।

माया–फिर कभी मेरे सामने ऐसी दलीलें पेश न करना।

अह–महारानी भी विश्वके मस्तकपर पैर रखकर अपनी हुकू-

लाया? आज जब पशुबल प्रभुका स्थान ग्रहण करनेके लिये ललकार रहा है तब किसके प्राण गुरुके लिये ऐसे विह्वल हो रहे हैं? (विजयको देखकर) ओ, जरा परीक्षा लेकर देखूं–

(विजयपर एक तीक्ष्ण दृष्टि डालते हैं, वह उठकर इधर-उधर ताकने लगता है।)

वि०—आप ही हैं क्या मेरे निर्दिष्ट गुरुदेव? आप ही हैं? पर वह मूर्त्ति–

नार०—युवक! तुम जिस पथपर चलनेके लिये आतुर हो, जानते हो वह कितना दुर्गम और दुस्तर है—सह सकोगे तुम उसकी ज्वालाको? जो जीते-जी अपनेको अग्निके हवाले नहीं कर सकते वे यहां टिक नहीं सकते, लौट जाओ।

वि०—लौट जाऊं?

नार०—हां, लौट जाओ। आकाशकी ऊंचाई कोई भले ही माप ले, समुद्रकी थाह पा ले, सहाराके सिकता-कणोको गिन ले, पर साधन-पथकी दूरीका पता लगाना संभव नहीं है। मेरा कहा मानो, लौट जाओ।

वि०—आपके दर्शनका फल अमोघ है, मेरी सफलताका द्योतक है।

नार०—(प्रसन्न होकर) वही हैं तुम्हारे गुरु जिनके दर्शन तुमने हृदयमें पाये हैं। वह काल अब आ गया; शीघ्र ही वे तुम्हें मिलेंगे।

(अतर्द्धान)

वि०—मै जागृत हू या स्वप्न देख रहा हू। कहां? कहां गये वे—

(प्रस्थान)

(दूसरी ओरसे गोवर्धन और प्रमोदका बाते करते प्रवेश)

प्र०—मुझे यहा और इस वेशमें देखकर तुम्हें बहुत आश्चर्य हो रहा है, पर इसका सारा श्रेय तुमको है गोवर्धन! ऐसा असर हुआ मेरे मनपर तुम्हारी बातोका कि आंखोंसे नींद भाग गयी। रह-रहकर जीमें आने लगा 'चल दू, चल दू'। एक दिन एक महतका जो ठाट-बाट देखा, तुमसे क्या कहू?

गो०—क्या देखा?

प्र०—देखा, रुपयेके पहाडके ऊपर मृगछाला बिछी है और उसपर विराजमान है मनुष्य-शरीरमें एक देवता। ऋद्धि-सिद्धि चंवर डुला रही है, ऐश्वर्य छत्र लिये खडा है, अप्सराएं आरती उतार रही है, राजे-महाराजे चरण पखार रहे है और हमारे-तुम्हारे जैसे न जाने कितने, दूर—अति दूर दरवाजेपर हाथ बाधे खडे है। इससे बढकर मनुष्य अपनी उन्नति और क्या कर सकता है?

गो०—अब आखें खुलीं?

प्र०—हा, खुलीं। पलकोपर यही स्वप्न लेकर निकला हू। देखें, भाग्य साथ देता है या नहीं।

गो०—इधर, भाग्य तो साथ देगा ही। 'मा सुचह' भगवान् कहते है—अरे बेवकूफ! मेरा कहा कर, तू सोच क्यो करता है? 'जोगछेम भहाम्हम्' जो साधु बनता है उसका सब भार मै ले

लेता हूं। उसे तो चाहिये शाहन्शाह-सा डोला करे और दाता-ओके घरोंमें मालपूओपर हाथ साफ किया करे।

प्र०—जब भगवान् ऐसा कहते हैं तो दुनियाके सभी लोग साधु क्यो नहीं बन जाते ?

गो०—गधे हैं गधे—गधेकी तरह उन्हे गंदे कपड़ोका गट्ठर ढोना ही अच्छा लगे तो, क्या करे ?

प्र०—तुम इतने ही दिनोमें ऐसे वाक्-पटु कैसे हो गये गोवर्धन ?

गो०—हें—हें, कुछ देकर तो कुछ पाया है। बिना सत्सग-के ऐसे सब रत्न नहीं मिलते। पर क्या कहूं, भाग्यके फेरसे अभी-तक गोटी नहीं बैठी—कोई मनको नचानेवाले गुरु नहीं मिले। कोई कहते हैं जप करो, कोई कहते है तप करो—एक स्थानपर लाटकी तरह गड़े रहो। अरे, जिसने माया-ममता तजी, उसके लिये बाकी रहा ही क्या ? साधुके लिये तो कहा ही है 'साधु जन रमते भले, बंधा गंदा होय' सदा विचरते रहना—जहा गये, जहा डेरा डाल दिया वहीं पौ बारह। तुम ! तुम कैसे यहा आ धमके ?

प्र०—किसी परिचितसे भेंट न हो जाय इसलिये एकदम दक्षिण चला आया था। दैवसंयोगसे यहा एक साधुसे भेंट हो गयी। वे काशीसे रामेश्वर जा रहे थे। उन्होने कहा—मधुबनी नामक शहरमें एक देवालय है; उसके महंत एक ऐसे व्यक्तिकी खोजमें हैं जो पढ़ा-लिखा हो, हर काममें दक्ष हो और उनके बाद उनकी गद्दीका भार सम्हालने योग्य हो, मै उन्हींके पास जा रहा हू।

गो०—देखा, कहा था न ! साधु बनते न बनते कैसा भाग्य

चेता! वह देखो एक महात्मा आ रहे है। चलो, उनके पास चले। उनके आश्रमका नाम सुनकर ही मै यहा आया था।

प्र०—(घूमकर देखते हुए) ना, मै तो उन्हींके पास जाऊगा।

(प्रस्थान)

(प्रज्ञानाथका प्रवेश)

प्रज्ञा०—कहा? कहा है वह? कहा भटक रहा है, किसने उसे अटका रखा है?

(गोवर्धन प्रणाम करता है)

(देखकर) कौन है यह? किसीने मानो तप्त लोहा छुआ दिया। क्या चाहते हो?

गो०—चरणोका दास बनना।

प्रज्ञा०—(गौरसे देखकर) एक बात पूछू? आज यदि तुम्हारी मृत्यु हो जाय तो तुम्हारे मनमें क्या अरमान रह जायगा?

गो०—(मुहसे सहसा निकल पडता है) मर जाऊ तो अच्छा ही हो, छुट्टी मिले—पर दिलके कितने प्यासे अरमान...

प्रज्ञा०—तो फिर यहा क्यो? यहा इस आगकी भट्ठीमें कूदने क्यो आये?

गो०—(चकित होकर) यहा भी वही आग! मेरा तो ख्याल था कि एक साधु ही ऐसे है जो इस दु खभरी दुनियाकी छातीपर बैठकर चैनकी बशी बजाते है।

प्रज्ञा०—वाह! पलकोपर कैसा इद्रजाल बिछा है! जो साधु काले नागको नाथकर उसके फणपर नाच नहीं सकते वे यहां चैनकी

वशी बजा सकते है ? तुम इस अग्नि-पथपर पग मत धरो, भस्म हो जाओगे।

गो०—क्षमा हो। एक प्रश्न है। भव-तापसे निस्तार पानेके लिये संसारका त्याग करना ही होगा—उसे सापकी केंचुलीकी तरह छोडना ही पडेगा, भारतकी यह जो मूल धारणा है, क्या यह भूल है ?

प्र०—सांपकी केचुलीकी तरह—क्या यह ससार भगवान्‌का नहीं, किसी दानवका बनाया हुआ है, जिसे छोडे बिना कल्याण नहीं ? यह वह हिमालियन भूल है जिसके कारण भारत आखोपर पट्टी बाधे तमस्‌के गर्त्तमें अभीतक गिरता चला जा रहा है, यह वह दूषित धारणा है जिसके कारण हमारे देशमें लाखो भेड़ोमें एक भी शेर, एक भी सच्चा साधक देखना दुर्लभ हो गया है—मै तुमसे कहता हू, इस तरह छल-कपटसे पेट भरनेके बदले डाका मारना सीखो—उससे नपुसकता तो दूर होगी !

गो०—(जीभ काटकर) डाका मारना ! साधु है आप !! साधु—भारतके भालके चमकते सितारे !!! दडवत्—

(तेजीसे प्रस्थान)

(देवव्रतका प्रवेश और प्रणाम)

देव०—देव ! अकस्मात् एक युवकसे मेरी भेंट हो गयी। उसे देखते ही चित्त ऐसा आकृष्ट हुआ कि श्रीसेवामें उसे स्वीकार करानेके लिये प्राण उत्कठित हो उठे। निश्चय ही वह इसी परिवारका कोई है। आज्ञा हो तो बुलाऊं उसे।

प्रज्ञा०–निःसंकोच ले आओ।

(देवव्रतका प्रस्थान और विजयके साथ प्रवेश)

वि०–(प्रज्ञानाथको दूरसे देखते ही) यही–यही है मेरी वह वाछित मूर्त्ति...

(साष्टाग प्रणाम)

प्रज्ञा०–(हाथ फैलाकर अग्रसर होते हुए) आ गये! वत्स! आ गये तुम!

वि०–(चरण पकडकर) आपके दर्शनोंसे मुझे भगवान्‌के दर्शनका सुख अनुभव हो रहा है। आप मेरे भाग्य-विधाता बनकर मेरा पशुत्व दूर करें।

प्रज्ञा०–(उसके सिरपर हाथ रखकर अलौकिक शक्तिपात करते है।) उठो वत्स! तुम्हें देखकर हृदय शीतल हुआ। आजसे तुम सत्यके सैनिक हुए, आजसे तुम्हारा नाम सत्यव्रत हुआ। आओ, आश्रम चले।

(सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान–भ्रातिनगरी

(गोवर्धन अकेला खडा-खडा सोच रहा है कि वह अगला कदम किधर रखे–किसीको अपना गुरु बनाये या नही। इस समय उसका मन वर्षाकालके सायकालीन आसमानकी तरह रग

बदल रहा है। इन भावतरगोको वह तसवीरकी तरह देख रहा है और आप-ही-आप बडबडा रहा है।)

गो०–(आकाशकी ओर ताकते हुए) सूर्य देवता सबको अपनी-अपनी ड्यूटीपर जुट जानेके लिये आह्वान करने लगे–सब कैसे नियमकी रस्सीसे कसे है। है देवताओमें यह शक्ति कि एक दिन अपना-अपना कर्म छोडकर बैठ जायं ! पवन अपनी प्रेयसी सुरभिको किसी फूलके आचलमें छिपी देखकर उससे प्रेमालाप करनेके लिये तनिक ठहर जाय; गगाका स्रोत तडपते प्राणियो-की आहोसे रगी कहानी सुननेके लिये जरा रुक जाय; पर गुरु-की ओर आखें उठाकर देखो, कितना स्वच्छद है उनका जीवन–उनका आसन सबके ऊपर है।

उस दिन देखा, देवेन बाबूने उनके आते ही २००) रु० चरणोपर रख दिये; थे वे कौन–कुलगुरु। देवेन बाबूके घरवाले इसी बातपर लट्टू थे कि गुरुदेव ऐसे आचारी है कि अपने बेटेतकका बनाया नही खाते। हाय रे ! मेरे बाप-दादा भी किसीके कुलगुरु बन गये होते तो मै नाती-पोतेतकका बनाया नही खाता !

और कुछ नहीं, जरा गीतापर वक्तृता झाडना ही सिखा जाते। जाने दो। मुझे तो किसीको गुरु बनाना ही पडेगा। (प्रज्ञानाथको याद कर) किन्तु.....किन्तु वे, दद्दा रे ! मुझे देखते ही खौलते तेलमें पडे नारियलकी तरह फट पडे। हाय ! हाय ! कैसी होती होगी दुर्गति उस बेचारेकी जो ऐसे गुरुके पल्ले पडता होगा ! अजी, ऐसे क्या और वैसे क्या ? जो किसीका शिष्यत्व ग्रहण करेगा उसे

दासताकी अंजलिसे पानी पीना ही पड़ेगा। यदि शिष्य बननेके माने यही है तो हे गुरुदेव! गोवर्धन नमस्कार करता है तुम्हें। अच्छा तो अब? क्या करूं, लौट चलूं? किन्तु कहां—

(सामने कोई रास्ता न देखकर वह चुप हो जाता है, थोडी देर बाद, वह जिन-जिन आश्रमोमे गया था उनके चित्र उसकी आखोके सामने खेलने लगते है।)

अच्छा, गुरुका काम क्या? धर्मका तत्त्व सिखाना, साधनाकी राह दिखाना। पर कहा—मैं जहा भी गया, याद तो नहीं आती—देखा हो किसीको इन बातोकी खोज करते, चर्चा चलाते, या तो लोग आते थे भेंट चढाकर पुण्य लूटने या पग पखारकर पाप धोने। होते थे—होते थे उनमें कोई ज्ञानके दीवाने, प्रकाशके परवाने? उस दिन स्वामी विदेहानन्दजी क्या कहते थे—दुनिया साधनाकी नहीं, स्वर्गकी भूखी है; उसे स्वर्ग चाहिये, पुण्यफलका लोभ देकर उससे कुछ भी करा लो। तो फिर मै ही क्यों—यह सौदा जब इतना सस्ता है तब मैं ही क्यो हाथ मलता रहू। किसका माहात्म्य क्या है, क्या करनेसे हाथो हाथ फल, मरते मुक्ति मिल सकती है इन बातोका रग जमानेमें—

(झिझककर) दुर! मैं क्या खाक-पत्थर सोच रहा हू, मुझे पूछता ही कौन है? मुझसा अधम—

(एकाएक चौककर) किसने कहा?

'बिना भेषकी पूजा कहा? भारतमें तो माला-तिलककी पूजा होती है।'

'कौन कहता है मैं अधम हूं ? गये वे दिन। अब तो योगबलसे अपने भीतर मैं उस शक्तिका सचार करूंगा कि पापी-तापी चरण छूते ही....(आखे मूद मन-ही-मन मगन हो एक हाथ आशीर्वादके लिये उठाकर) कोई कहेगी, मेरे बच्चा नहीं होता, कोई कहेगी, मेरा लडका अच्छा नहीं होता, और मैं.....मैं कहूगा—आहा! कब देखेंगे नयना वे दिन—

(किसी कल्पित व्यक्तिसे) सुभाषिणि! कौन हो तुम? तुम्हारे उपदेशसे मेरा सूखा दिल लहलहा उठा।

(सहसा चमककर इधर-उधर ताकते हुए) 'मूढ! यह सुभाषिणी नही, सर्वनाशकी यह वह प्रतिमा है जो तुम्हारा जीवन शून्य नैराश्य-में परिणत कर देगी।'

क्या यह सच है? क्या इसकी मिश्री घुली बोलीमें पारा मिला है?

(दूसरी आवाज) 'मारो झाड़, निकालो उस कलमुहेको'—ऐं निकाल दूं! जरा पूछूं तो, वह है कौन?

अजी तुम कौन हो?

क्या कहा? 'विवेक।'

'अब भी तुम खड़े हो? लो, मैं जाती हूं, मैं कहती हू उसके फेरमें मत पडो। वह आगके समुद्रको आनन्दका समुद्र बताकर कहेगा—"आसक्तिका गला घोट दो, वासनाकी छातीमें कटार भोक दो"!'

कटार भोकनेको कहेगा! कटार भोकनेको! जिसका नाम लेते

मुख मिठाससे भर जाता है, जो अपने प्रेमकी धारासे मानव-हृदयको टापूकी तरह घेरे रहती है—उसके गलेपर कटार!—दूर हो, दूर हो मेरे सामनेसे। किसने बुलाया था तुम्हे?"

'देखा, तुम अपने हाथो अपनी हत्या करने जा रहे हो, इसीलिये अलार्मकी घंटी बजाने चला आया।'

अरे यह क्या? वह देखो—उसका फूल-सा चेहरा जर्द पड गया। ना-ना, जाओ तुम। सामने शीतल सुखद छाया छोड़ मैं लूमें जलने क्यो जाऊ?

(नेपथ्य में)

(कुमति गोवर्धनपर अपना रोब जमता देख, विवेकको धक्के मारकर गिरा देती है और विजयोल्लाससे उन्मत्त हो उसकी छाती-पर चढकर अपनी हुकूमत चलाती है। गोवर्धनके हृदयमे आंधी रुकनेके वादका-सा सन्नाटा छा जाता है। कुछ देर बाद फिर उसे सुनायी पडता है।)

'दूर करो इन दुविधाओको; अपने हाथों अग्निके रगमें रग डालो कपडे और नाम रख लो घोरानंद।'

मिट गया हा-नाका झमेला—सामने मैदान साफ है। मगर अब सवाल यह है—सब नामके पुजारी हैं, बिना कुछ चमत्कार दिखाये . . . फिर गडबडी मच गयी। (सोचता है) कुछ दिन धरना देनेसे कोई देवता नहीं पिघलेगे! अच्छा, न सही। जबतक भारत-में एक भी हिन्दूका घर है तबतक साधुओको काहेकी कमी—

(प्रस्थान)

(कुमति, जिसके रूपमे ज्वाला है, नजरमे जहर है, स्वरमें छल है, हाथ चमकाते हुए प्रवेश करती है।)

कु०–हा! हा! साधनाके रणरगमें जूझने चले थे, सैनिक जैसे जंगको जाता है, संन्यासी सजकर मायाको कुचलने चले थे! चलूं, महारानीको खबर दूं; कितनी खुश होंगी आज वे–

(इठलाते हुए प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान–सत्यव्रतके गुरुका योगाश्रम

(सत्यव्रत हाथमे झाडू लिये बुहार रहा है)

सत्य०–(बुहारते-बुहारते) "दिवस यामिनी आठो याम। जो कुछ भी हो तनसे काम॥" देवव्रत! तुम अपनेको कैसे क्षण-क्षण धीरे-धीरे गढ रहे हो.... (याद करके) "अर्घ्य अर्चना हो वह तेरी। जगा चेतना जननी मेरी॥" बैंकमें लाखो रुपये पड़े हैं, अजलि कैसे.....(चौककर) अह! पुराने घावमें कीडोकी तरह ये बातें! इस पापी मनसे मै क्या कहू; मक्खीकी तरह विष्ठापर....गुरुदेव आते ही होगे, मैंने अभीतक.... (जल्दी-जल्दी बुहारने लगता है) दिवस यामिनी....

(प्रज्ञानाथ प्रवेश कर वेदीपर बैठते है। सत्यव्रत चरणरज भालपर चदनकी तरह लगा सामने बैठता है।)

सत्य०–श्रीचरणोंकी आज्ञा है–कर्मसे बढ़कर सरल और सुगम

मार्ग योगमें प्रवेश करनेका दूसरा नहीं है, किन्तु कर्ममें प्रवृत्त होते ही 'स्मरण'का धागा क्यो टूट जाता है?

प्रज्ञा०—इसलिये कि भीतर अभी भगवान् जमकर नहीं बैठे हैं।

सत्य०—देव! (अपने शरीरको छूकर) इस मदिरमें उस देवताकी प्राण-प्रतिष्ठा कैसे हो सकती है?

प्रज्ञा०—मदिरमें! कहो इस मिट्टीमें। इस मिट्टीके अधकारमें उसकी किरणें तो वत्स! शरणागति ही उतार सकती है।

सत्य०—'मैं तेरा, मैं तेरा' प्रभो! मैं तबसे कर रहा हूं जबसे गीता हाथोमें पडी, किंतु काले रगसे रगे कपडेपर तो दूसरा रग चढता ही नहीं, मैं क्या करूं?

प्रज्ञा०—मैं कहू सो कर सकोगे?

सत्य०—यदि नहीं कर सका तो कुएमें गिरकर प्राण दे दूगा।

प्रज्ञा०—कुएमें गिरना सहज है, पर जो मैं कहता हू उसे कर दिखाना आसान नहीं है सत्यव्रत!

सत्य०—(आग्रहसे) हृदय आदेश पानेके लिये उत्सुक है।

प्रज्ञा०—अच्छी बात है। पहले यह बताओ, यहा आनेसे पूर्व तुम्हारी दिनचर्या क्या थी?

सत्य०—(सात्त्विक अहकारसे प्रेरित होकर) फूलोके खिलनेसे पहले मेरी गीता खुलती थी और उसके समाप्त होनेपर ही मैं आसनसे उठता था। यम-नियम आदिके पालनमें भी कभी प्रमाद आने नहीं दिया।

प्रज्ञा०—तुमने जो कुछ कहा उससे स्पष्ट है न कि इससे तुम्हारे

अहकारको एक तृप्ति मिलती थी कि तुम कुछ कर रहे हो। क्या तुम अपनी इस भावनाको छोड सकते हो?

(सत्यव्रत अवाक् होकर गुरुकी ओर ताकने लगता है।)

प्रज्ञा०—बड़ा आश्चर्य हो रहा है तुम्हे! क्या तुम नहीं देखते, लोग गीता रटते, गगा नहाते जीवन बिता देते हैं पर ऐसी कोई शक्ति जागृत नहीं कर पाते जो कोयलेको हीरा कर दे, अंतरके दानवको देवता बना दे। मैं खेत जोतनेकी बात नहीं कहता, सुन्दर पुष्ट बीज बोनेकी बात नहीं कहता, वह तो करना ही होगा, किंतु, बस, वहीतक! परन्तु लोगोको अपने प्रयत्नपर आवश्यकतासे इतना अधिक भरोसा रहता है कि शरणागति जो हृदयकी अंधेरी गुफाओको आलोकित कर सकती है, अंदरके स्वर्गका दरवाजा खोल सकती है, ऐसी कुचल दी जाती है कि बेचारी सर उठानेका अवसर ही नहीं पाती।

(सत्यव्रत कुछ कहना चाहता है, पर मुहकी बात मुहमे रह जाती है।)

प्रज्ञा०—नतीजा क्या होता है? बेचारे जीवनभर उल्टी धारामें तैरनेवालेके सदृश हाथ-पैर पटकते रह जाते हैं।

सत्य०—जीवनभर हाथ-पैर पटकते रह जाते है! दुनिया जब मजदूरकी एक दिनकी मजदूरी नही रखती तो दुनियाके मालिकके घर यह बेइन्साफी क्यो?

प्रज्ञा०—बेइन्साफी? अच्छा, यह बताओ कि दिनभर खटकर जब एक आदमी ५) कमा नहीं सकता तो दूसरा एक घंटेमें

५०) क्यो कमा लेता है? सफरके लिये गधे, घोडे, रेल, मोटर सभी है पर कोई पक्की सडक छोडकर मरियल टट्टूपर सवार हो पगडडीसे ही चलना पसद करे तो इसमें भगवान्का क्या दोष? मै तुमसे पूछता हू, तुम अपने लिये कौनसा पथ चुनते हो?

सत्य०–जिसे गुरुदेव कहे।

प्रज्ञा०–अपना पथ यदि मैं तुम्हे आप चुननेको कहू?

सत्य०–तो अवश्य भूल कर बैठूगा।

प्रज्ञा०–ना, अपना पथ तुम्हें आप चुनना पडेगा। सामने देखो, कुछ देखते हो?

सत्य०–कुछ नहीं गुरुदेव!

प्रज्ञा०–अच्छा, अब देखो।

(सत्यव्रतकी आखे सहसा वद हो जाती है।)

प्रज्ञा–क्या देखा?

सत्य०–घने गहरे अधकारके सिवा कुछ दिखायी नहीं देता प्रभो!

(प्रज्ञानाथ उसे तीक्ष्ण दृष्टिसे देखते है, उनके चक्षुसे ज्योति-किरणे तीरकी तरह निकलकर उसमे प्रवेश करती है। वह वाह्य-चेतना-शून्य हो जाता है। थोडी देर वाद)

प्रज्ञा०–क्या देखा?

सत्य०–(स्वप्नावेशसे उठकर) क्या देखा! क्या देखा! वह रूप! वह छटा! वह दृश्य!

प्रज्ञा०–(आदेशपूर्ण स्वरमे) एक किरणके स्पर्शसे यदि तुम

इतने विह्वल हो उठोगे तो आलोककी बाढ कैसे धारण कर सकोगे? कहो, क्या देखा?

सत्य०–देखा! गुरुदेव देखा! मेरे सामने नाना प्रकारके मत बिखरे पड़े है, विभिन्न प्रकारके योगमार्ग खुले पड़े है; उनमेंसे देखा, एकमें प्रवेश हृदय-द्वारके खुलनेसे होता है, पर दरवाजेके तालेमें चाबी लोग उल्टी घुमा रहे है, और जो अदर घुस सके है वे दूसरोसे अपनी भक्तिकी पूजा कराकर सर्वस्व स्वाहा कर रहे है; कुछको देखा, परमार्थके नामपर स्वार्थ-रूपी दैत्यकी पूजा कर रहे है और उन्हे पतातक नहीं। कुछ बीचमें ही थककर बैठ गये है। एकको देखा, वह नेत्रहीन है पर दूसरोका पथ-प्रदर्शक बन सबको लिये दिये गढ़ेमें गिर रहा है। यह सब देखकर मै बहुत घबडाया और 'पाहि शरणम्' कहकर पुकारने लगा।

प्रज्ञा०–अच्छा, फिर?

सत्य०–इतनेमें क्या देखता हूं कि भगवान् एक जाज्वल्यमान रथपर बैठे है और मुझे–इस दीनको–अपने रथपर बैठानेके लिये बुला रहे है; किंतु...किंतु नहीं सह सकीं अभागी आखें उतना प्रकाश, शरीर कापने लगा, मै वहीं बैठ गया। जब आखें खुलीं तो वही अधकार–

प्रज्ञा०–शुरू-शुरूमें किसीसे अपने जीवनकी बागडोर भगवान्के हाथोमें सौंपते नही बनती–सब कुछ उनपर छोडा नहीं जाता। रह-रहकर हमारा अहकार चिल्ला उठता है, 'यह करते तो सफल हो जाते, वह करते तो कृतकार्य हो जाते'। ठीक रास्तेपर आकर

मनुष्य तब खडा होता है जब वह सब कुछ करके हार जाता है और तभी उसमें शरणागतिके कुछ भाव जागृत होते हैं। शरणागतिका पथ तुमने स्वत चुना वत्स! इससे मुझे बडी प्रसन्नता हुई।

(सत्यव्रत मस्तक झुका लेता है। प्रज्ञानाथ उसके सिरपर हाथ फेरते है।)

प्रज्ञा०—सुनो सत्यव्रत! जीवनको अब पूजाके फूलकी तरह महाशक्तिके चरणोमें समर्पित कर दो—यह हो, वह न हो, कोई माग नहीं, कोई चाह नहीं। बच्चोको बिल्ली कूडे-कर्कटमें लिटावे या राजाके विस्तरपर—चुपचाप देखते रहो। तभी वह तुम्हारे भीतरसे अपना कार्य कर सकेगी। जिस दिन वह तुम्हारी साधनाका भार अपने हाथोमें ले लेगी, तुम देखोगे कि तुम्हे भगवान्का स्पर्श ही नहीं मिलने लगा है बल्कि मिट्टीका सोना बनना आरभ हो गया है—तुम्हारी शरणागति स्वीकार ही नहीं कर ली गयी है बल्कि वह पल्लवित और पुष्पित होने लगी है।

सत्य०—देव! शरणागतिमें हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है इसका क्या प्रमाण है?

प्रज्ञा०—इसका प्रमाण है प्रत्यक्ष अनुभव। शरणागतिका गुलाब जब साधनाकी कटीली डालपर खिलेगा तो तुम्हारी रग-रग, तुम्हारा अग-अग, उसके प्रकाशसे, उसके सुवाससे परिपूरित हो उठेगा, उत्फुल्ल हो उठेगा। तुम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकोगे कि तुम्हारे जीवन-वृक्षका एक पत्ता भी उसकी इच्छाके बिना नहीं

हिलता। चाहिये भूख–ऐसी भूख जो अहंकारको खा जाय। जाओ वीर! जगी जहाज जैसे रणोन्मत्त सिंधुको चीरता चला जाता है, विघ्न-वाहिनीको तुम वैसे ही रौंदते चले जाओ। देवगण तुम्हारे सहायक हो।

सत्य०–(चरणोमे सिर रखकर) गुरुकृपा-गढमें मेरा निरंतर निवास हो।

(प्रस्थान)

प्रज्ञा०–(सोचकर) विकसित तो यह अवश्य होगा, क्योंकि सच्चा है, परंतु इसे बहुत गहरे युद्धमें उतरना पड़ेगा। मेरा काम है अतरकी शक्तिको जगा देना, उसे कार्यमें लगा देना जिससे उसका संपुट ज्ञान-कमल एक-एक दल करके खिल सके, बस–

(विचारते हुए प्रस्थान)

पांचवां दृश्य

स्थान–विजयका शयनागार

(अजलि)

अजलि–इस कमरेमें प्रवेश करते ही जी ऐसा उमडने लगता है कि धीरज धरना मुश्किल हो जाता है। (आसू पोछते हुए) आसुओ! तुम्हें देखकर अब किसका दिल पिघलेगा? इसलिये कहती हूं बाहर मत निकलो, हृदयके श्मशानमें ही सूख जाओ।

(ठहरकर) उनके प्रवेश करते ही यह कमरा कैसा जग-

मगा उठता था, सब चीजें कैसी चेतन-सी हो उठती थीं, और अब-सब मानो सिर झुकाकर रो रही हैं (हठात् उसकी नजर विजयकी झरना-कलम (फाउण्टेनपेन) पर पडती है; उसे उठाकर देखते हुए) एक यह है जिसने उनके विरहमें अपने शरीरका रक्ततक काला कर डाला है। कैसी यह फूली नहीं समाती थी जब वे इसे हृदयसे लगाते थे! (उसे चूमकर) तू मुझसे पूछती है, क्या वे दिन फिर आयेंगे? वहन! मैं भी भाग्यसे पूछती हूं-क्या वे दिन फिर आयेंगे?

(अक्षयका दौडते हुए प्रवेश)

अ०-(उसे गोदमें उठाकर चूमते हुए) बेटा! तेरे पिताजी कब आयेंगे?

अक्ष०-जब भगवान्‌को पकल लेंगे।

अ०-जब तेरे पिताजी आयेंगे तब उनसे तू क्या कहेगा?

अक्ष०-कहूंगा, पिताजी हमको दिखाओ तुमने भगवान्‌को।

अ०-भगवान्‌को देखकर तू उनसे क्या कहेगा?

अक्ष०-वल (वर) मागूंगा।

अं०-(हसकर) क्या वर मागेगा?

अक्ष०-वल मागूंगा कि अब पिताजी हमको औल् अम्माको छोलकर न जाय।

(रामाका प्रवेश)

रामा-नये मुनीमजी आये हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।

अ०-(मिट्टीके तेलकी तरह सलाई लगते ही भभककर)

क्यो ? मुझसे मिलना क्यों चाहता है ? मैंने पडितजीको बुलाया है—जा कह दे, जो कहना हो उनके द्वारा कहलाये। मै उसका मुंह देखना नहीं चाहती।

(रामाका प्रस्थान, उसके साथ-साथ अक्षय जाता है।)

(सोचती है) बड़े मुनीमजीके स्थानपर इसे रखकर मैंने बड़ी भूल की। मै क्या जानती थी कि यह ऐसा कुलांगार निकलेगा। मुझे वह ऐसे ताकता है कि खा ही जायगा, अक्षय उसे देखते ही ऐसे भागता है मानो बाघ आया हो। मुनीमजी, तुम्हारी आत्मा मुझे दोष न दे; जिस प्रजाको वे पुत्रकी तरह पालते थे उसका यह खून चूसे और मै चुपचाप देखती रहू—ना, मुझसे यह नही हो सकेगा। मै आज ही उसे—

(रामाका पुन प्रवेश)

रामा—वे कहते है कि एक बहुत जरूरी कामसे मिलना है।

अं०—ना, मै उससे कभी नहीं मिलूगी। वह दासीसे क्या बाते पूछता था—जा कह दे अभी चला जाय और फिर कभी यहा पैर न रखे।

(रामाका प्रस्थान)

सुना है, बहुतसी रिअयाको उसने मिला लिया है, किसीको पैसेसे, किसीको भयसे। अधिकार पाकर वह उन्मत्त हो उठा है। (होठ चबाते हुए) मै उसे मिट्टीमें मिला दूगी। देखें, वह क्या करता है—उनका पुण्यबल मेरे साथ है।

(रामाका पुन प्रवेश)

रामा—पडितजीको वह भीतर आने नहीं देते; कहते हैं—इन्होंने ही मालकिनको बिगाडा है। बिना उनके हुक्मके वे भीतर नहीं आ सकते।

अ०—क्या कहा—बिना उसके हुक्मके? और तू खडा-खडा सब सुनता रहा! दरवानसे कह उसे धक्के मारकर निकाल दे। मैं स्वय जाती हू, मैं सिहनी बनकर उसे फाड डालूगी।

(दामोदर प० का प्रवेश)

दामो०—शात हो बेटी, दुर्जनसे दूर रहना ही अच्छा है।

अ०—उसकी इतनी मजाल! मेरे जीते-जी वह आपका अपमान करे। रामा! जा, दरवानसे कह दे कि वह कचहरीमें दूसरा ताला लगा दे और मेरे हुक्मके बिना किसीको वहा पैर रखने न दे।

(रामाका प्रस्थान)

दामो०—यह चोट खाया साप मौका पाकर कहीं चोट न करे बेटी!

अ०—करे चोट! यदि भगवान् है और आश्रित-पालक उनका नाम है तो मेरी रक्षा अवश्य होगी।

दामो०—सुनो, किसीको उसके स्थानपर नियुक्त करना ही पडेगा, और जल्दी ही करना पडेगा। (सोचकर) मेरे जीमें एक बात आती है। तुम्हे भवेशका नाम तो याद होगा जिसे विजयने बचाया था और कुछ रुपये दिये थे। उन रुपयोंसे पुराने लोहेका कारोबार करके उसने बहुत तरक्की की है, आज सैकड़ो उसके हाथोंसे रोजी पाते है। योग्य सेवाके लिये वह बराबर कहा

करता है। तुम्हारी क्या राय है?

अ०–हा, ऐसा आदमी कृतघ्न नहीं होगा–और फ़िर उनकी मैंने अपने हाथोसे सेवा-शुश्रूषा की है, पर वे मेरे यहा रहना स्वीकार करेंगे?

दामो०–सो मै उसे राजी कर लूगा। उसके पास मै अभी जाता हूं।

(प्रस्थान)

अ०–एक ये है और एक वह; विधाता, तुम्हारी फुलवारीमें–

(भामाका रोते हुए प्रवेश)

भामा–बहन! मेरी रक्षा करो! रक्षा करो!

अ०–कौन हो तुम?

भामा–वह–जो खसमके रहते भस्म हो रही है, जिसने बापके भरोसे ऐंठकर अपना घर अपने हाथों उजाड़ा है, वह–जो हाथका लाल फेंककर अगारेके पीछे दौड़ पडी और जल मरी। बहन! मुझपर तरस खाओ; भगवान् तुम्हारे लालको निहाल कर देगा।

अ०–बहन, दुःख आया है तो उसे पत्थर बनकर सहना सीखो, नहीं तो वह पीस डालेगा।

भामा–नहीं, और नहीं–कलेजा पक गया है। जान दे दूगी पर भाई-भौजाईके तलवे चाटकर और नहीं–और नहीं जीऊगी। धान कूटते, चक्की पीसते, दिन बिताती हूं उसपर बापकी झिड़किया और भाईका झाड़ू–ना, और नहीं। (आखे ऊपर उठाकर) भगवान् तू है? अगर है तो दुखियोपर इतना अत्या-

चार तुझसे कैसे देखा जाता है–क्या आखोमें तू पट्टी बाधे बैठा है!

अ०–दासी!

(दासीका प्रवेश)

जा, नीचेके कमरेमें इनके रहनेका प्रबन्ध कर दे। जाओ बहन उसके साथ।

(भामा जानेको उद्यत होती है। वायुवेगसे रजनी आती है।)

रज०–तुम्हीं हो? तुम्हीं हो गोवर्धनकी स्त्री? कहा कहां ढूढ़ा तुम्हें मैंने। क्या तुम मेरे हृदयका दावानल बुझा सकती हो? बता सकती हो? वता सकती हो मुझे उस नर-पिशाचका पता, जिसने मेरा धन लूटा, धर्म लूटा और मुझे मझधारमें छोडकर भाग गया।

भामा–बहन, तुम कौन हो? किसने तुम्हारा सर्वनाश किया है?

रज०–मैंने सुना, गोवर्धनकी बातोमें आकर ही वह साधु बना है। चुल्लूभर पानीमें डूब क्यो न मरा, पापकी इतनी भारी गठरी लादकर साधु कैसे बन गया? जिसने मेरा सर्वनाश किया उसका सत्यानास करके चैन लूगी। बता सकती हो उसका पता? बता सकती हो?

भामा–नहीं बहन, ऐसा न करो–और उन्हें दुख मत दो; मैंने उन्हे बहुत दुख दिया है। (घुटने टेककर) उनकी हत्या करनेके बदले मेरी हत्या कर डालो।

रज०–पुरुष! आखें हो तो देख! नारीका हृदय देख! नारीका पुण्यवल यदि तेरे साथ न होता तो तू कबका रसातलमें पहुँच

गया होता। बहन! मेरा आक्रोश तुमपर नहीं है–तुम्हारे पतिपर नही है–मै तो उसकी मददसे उस जल्लादको ढूढ निकालना चाहती हूं जिसने..(क्रोधसे शरीर कापने लगता है।)

ना, ना तुम मेरा दिल नरम मत करो। मै बदला चाहता हू, बदला!

(कहते हुए वेगसे प्रस्थान)

(अजलि और भामा भौचक होकर एक-दूसरेका मुह ताकने लगती है।)

(पर्दा गिरता है।)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—आश्रमके समीप एक वट-वृक्ष

(सत्यव्रत चयन किये पुष्पोंको छाट-छाटकर रख रहा है। बीच-बीचमें किसी-किसी फूलको देखकर वह भाव-तरगोंमें वह जाता है।)

सत्य०—(एक धतूरेको हाथमें लेकर) धतूरे! तुझे टहनियोंमें लगे देख मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कोई नन्हें-नन्हें हाथोंमें सफेद प्याला लिये तपस्या कर रहा है। तू अमृत चाहता है—मेरे गुरुके चरण चूमकर देख, मधुसे तेरा प्याला पूर्ण हो जायगा। (उसे रखके एक गुलाब उठाकर) रे गुलाब! तुझमें ऐसी स्वर्गीय हँसी कहासे आयी—सुख, सन्तोष और आनन्द मानो तेरे रोम-रोमसे टपक रहे हैं। क्या तूने अमृत पाया है? पर कैसे? (उसे हृदयसे लगाकर) क्या कहा, शरणागतिके प्रतापसे? देवलोकसे क्या तू यही सदेश लेकर आया है? सखे! तू मुझे वही पाठ पढा, वही मत्र....सिखा ...(भावमें डूब जाता है)।

(सत्यव्रतके कुछ गुरुभाई देवव्रतके साथ प्रवेश करते हैं। उसे

ध्यानस्थ देखकर देवव्रत सबको बैठनेके लिये संकेत करता है। सब उसे घेरकर बैठ जाते है।)

सत्य०—(जैसे स्वप्नावेशसे उठकर) मै यहा कैसे चला आया? वे दैत्य कहा गये?

देव०—कौन दैत्य?

सत्य०—देवव्रत! देवव्रत! ध्यानमें, मैने देखा, मेरे सामने एक नदी है। उसके ऊपर एक पुल है। पुलके उस पार दलके दल विकटाकार दैत्य, पर्वतकी खाईकी तरह मुह बाये खडे है। उन्हे देखते ही क्या कहूं—होश उड गये पर मांको पुकारते ही हृदयमें बल आ गया और मै चल पड़ा। कुछ दूर ही जा पाया था कि किसीने पुलमें आग लगा दी। नदीमें गिरनेको ही था कि किसीके हाथने पकड़कर उस पार फेंक दिया। (आखोमे कृतज्ञताके आसू भर आते है।)

देव०—यह है मातापर भरोसा करनेका फल। कुछ गाओ न सत्यव्रत, हम लोग तुम्हारा संगीत सुनने आये है।

(सबके अनुरोधसे सत्यव्रत गद्‌गद स्वरमे गाता है।)

हर स्वर मेरा उच्चार करे, हर सांस यही झंकार करे।
मेरा हर रोम पुकार करे, 'मै तेरा मां! मैं तेरा'॥
मम मृदंगके सब तालोंमें, हृत्तंत्रीके सब तारों में।
धुन यही एक गुंजार करे, 'मैं तेरा मॉं! मै तेरा'॥
जीवनके शरद वसंतोंमें; गरमी जल शिशिर हिमंतोंमें।

हृत्-कुजमें कोकिल कूक करे, 'मै तेरा मां! मै तेरा' ॥
चरणोंमें आवेदन मेरा, टूटे मां! सीमाका घेरा।
पुलकित हो सकल पुकार करें 'मै तेरा मां! मै तेरा' ॥

(सगीतके माधुर्यसे स्वर्गीय वातावरण उपस्थित हो जाता है। विभिन्न प्रकारकी अलौकिक सुगधोंसे स्थान महर-महर करने लगता है। किसीके नेत्र खुले-के-खुले रह जाते है। कोई पत्थरके पुतले-सा स्थिर हो जाता है।)

एक—अरे, यहा कपूरकी सुगध कहासे आने लगी?

दूसरा—अरे, यह तो किसी यज्ञके होमकी सुगध है।

तीसरा—यह क्या! मैने क्या देखा?

देव०—क्या देखा तुमने?

तीसरा—देखा, हृदयके अति निबिड अरण्यमें नाना प्रकारके हिस्र जन्तु निनाद कर रहे है, नाना दिशाओमें दौड रहे है, एक दूसरेको खानेके लिये झपट रहे है—प्राण व्याकुल हो उठे। इतनेमें क्या देखता हू कि ठीक मध्यवर्ती गुहासे एक श्वेत रगका शेर दहाडता हुआ निकला। उसे देखते ही सब चुप।

देव०—यह बहुत उच्चकोटिकी अनुभूति है। यही है वह चैत्य-पुरुष जिसके बारेमें गुरुदेव कहते नहीं थकते। दरबारमें राजाके आते सब चुप।

चौथा—साधनामें हमारी उन्नति हो रही है यह कैसे जाना जा सकता है, देवव्रत?

देव०—जब देखो, बाह्य बधन क्षीण होने लगे है, काम क्रोध आदि-के कोलाहल कम होने लगे है, वृत्तिया अन्तर्मुख होने लगी है, अंतर्ज्योतिका प्रकाश मिलने लगा है तो समझना चाहिये कि साधना-में हमारी अच्छी प्रगति हो रही है। ज्ञानदेव! तुम चुप क्यो हो?

ज्ञानदेव—कुछ नहीं होता—भाई, कुछ भी नहीं होता! इस समय मेरी साधनाका रथ-चक्र ऐसे पकमें जा फंसा है कि जितना मै उसे बाहर निकालना चाहता हूं उतना वह धंसता चला जाता है। भाई, तुम लोग महान् हो।

सत्य०—हम लोग सभी समान है—गुरुकृपाकणके भिखारी है, मातृ-पद-नख-ज्योतिसे खिले एक-एक कुमुद है।

देव०—महान्—भई, गुलाम क्या खाक महान् होगा! अपने घरमें ही हम लोग पराधीनताकी बेड़ियोमें जकड़े पडे है। गुलामों-के घरका हिसाब रखे कौन? इसका सहज और स्वाभाविक उत्तर है—उसके घरका मालिक। जबतक जीवनकी लगाम अहकारके हाथमें है, तबतक कोई क्या खाक महान् होगा!

पांचवां—भाई! तुम लोगोंका साधनामें प्रवेश तो हो गया। पर मेरे मनके पैर पृथ्वीसे उठते ही नहीं। जैसी गुरुदेवकी कृपा तुमपर है कदाचित् मुझपर भी होती।

सत्य०—अरे, वह कृपाधन किसपर अपनी अमृतवर्षा करना नहीं चाहता? हममें ग्रहणशक्ति ही कहां?

छठा—यह तो मानना ही पड़ेगा, उनकी कृपा जितनी तुम दोनो-पर है उतनी औरोपर नहीं—तुम्हारी तुलना किससे हो सकती है?

सत्य०—उस दूबसे जिसपर, सोमदत्त! तुम खड़े हो।

ज्ञान०—भाई, हिमालयको फोडकर यदि जाह्नवी निकल सकती है तो हम लोगोंके हृदयकी चट्टान नहीं फटेगी?

देव०—अवश्य फटेगी—और उससे एक दिन ज्ञानकी धारा अवश्य फूटेगी। हम लोगोमेंसे प्रत्येकका भविष्य गुरुदेव दिव्य दृष्टिकी स्याहीमें ज्ञानकी कलम डुबोकर लिख रहे है—वह अचूक है। चलो, चले।

(सब जाना चाहते है।)

('विश्वास' आकाशसे अपनी ज्योति-किरणे फेकता है, कुछ-के चेहरे दमक उठते है।)

(सबका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—गगातटपर घोरानदकी मठिया

(घोरानद अपने वडे शिष्य भूमानदसे वाते कर रहा है।)

घोरा०—तुमसे इतना करते नहीं बना?

भूमा०—क्षमा हो। मै जाता हूं और अभी उसका पता लगा-कर आता हू।

(प्रस्थान)

घोरा०—कल वह सेठानीके साथ आयी थी, आज शायद फिर आवे। वह यहा आ कैसे पहुची!

(कुछ दर्शनार्थियोका प्रवेश)

रामधन–बाबा, न घरमें मन लगता है न किसी काममें; जी करता है सदा यहीं बैठा रहूं।

एक युवती–(पैरोपर गिरकर) रक्षा करो बाबा! रक्षा करो! आज मुझपर इतनी मार पड़ी है कि मै बेदम हो रही हू। मेरा यही कसूर है कि मेरे पिता दहेजमें गाड़ीभर माल और थैलीभर रुपया नहीं दे सके। वे लोग मुझे मारकर दूसरी शादी करना चाहते है।

घोरा०–उठ, बटी, उठ! मै उन्हे समझा दूगा।

रामप्यारीकी मा–दिन-रात किच-किच। ऐसा कुछ करो, बाबा, कि इनकी मति सुधरे।

(सेठानीके साथ एक स्त्रीका प्रवेश)

सेठानी–थारो आशीर्वाद खूब फलो बाबा। सेठजी मुकदमों जीत गया। (सामने ५०) रखकर प्रणाम करती है।) इतारे जाऊं छू। ओजू आंव सू। ऐंको पति साधू बन गयाछ। कुभमा म्हारे सागे होली। या पर दया करो बाबा! (स्त्रीसे) तू अठे रह। बाबा सेती सगरी बाते कह। बाबा थारो दुःख हर लेगा।

(प्रस्थान)

घोरा०–(आगतुकसे) तुम सुलतानपुरकी रहनेवाली हो न?
(स्त्री एक बार चौकती है पर झट अपना रुख बदल लेती है।)
(दर्शनार्थियोसे) अभी तुम लोग जाओ, फिर आना।

(युवती आदिका प्रस्थान)

रामधन–मैं तो नहीं जाऊंगा, बाबाके पास...

घोरा०–भाग यहांसे। बाबा-बाबा मचा रखा है!

(रामधनका प्रस्थान)

(पुकारकर) मगला! दरवाजेपर खड़ा रह; कोई आवे तो कहना बाबा विश्राम कर रहे हैं।

स्त्री–आप यहा गुलछर्रे उडा रहे हैं, वहां बेचारी भामा आपके लिये खाटपर सट गयी।

घोरा०–(व्यग्यसे हसकर) मेरे लिये, हु!

स्त्री–यह कैसी निष्ठुरता है, और आप साधु कहलाते हैं!

घोरा०–तुम क्या जानो, उसने मेरे जिगरमें कैसी-कैसी चोटें पहुचायी है।

स्त्री–मनुष्य नहीं जानता वह स्त्रियोपर कैसे-कैसे सेल फेंकता है, फिर भी कोई स्त्री कभी ..

घोरा०–मै ताड गया तुम कौन हो और मुझसे क्या कराना चाहती हो।

स्त्री–आप-जैसे महात्मा भला मेरे मनकी बात न जान सकेगे? मगर यह तो बताइये–दो दिनोमें आप इतने बडे परमहस कैसे बन बैठे?

घोरा०–है, है, बुद्धि चाहिये, बुद्धि! जरा आता प्रमोद और देखता मेरी क्षमता।

स्त्री–उस कलमुहेका मेरे सामने नाम न ले।

घोरा०–तुम उसका नाम तो सुनना नहीं चाहतीं किंतु आ

पहुंची हो यहा किसकी खोजमें ?

स्त्री०–इसीलिये कहती हू, अभी आप अधूरे है, पूरे सर्वदर्शी नहीं हो पाये।

घोरा०–तो तुम्हारा क्या उपदेश है ?

स्त्री–मानेंगे मेरा उपदेश ? लगेगा अच्छा ? मेरा उपदेश बस इतना ही है कि आप दूसरोको धोखा देना छोड़ दें।

घोरा०–(बिगड़कर) धोखा ! अपना घर-बार फूककर दूसरोको धोखा देनेके लिये मैं यहां बैठा हू ? ऐसे-ऐसे घरकी स्त्रिया धोखा खानेके लिये तलवे धो-धोकर पीती हैं ? यह खूबी है जमानेकी। आजका मनुष्य साधु-सतोकी खिल्ली उड़ानेमें ही अपनी बहादुरी समझता है, इसीलिये तो वह आटेकी तरह गूधा जा रहा है, रोटीकी तरह सेका जा रहा है, पर कोई आसू पोछनेवाला नही मिलता।

स्त्री–(स्थिति को सभालते हुए) दैवसयोगसे जब आपके दर्शन हुए, सोचा, दुःखके दिन गये; पर अपनी हड्डी देकर दूसरोका उपकार करनेवाले दधीचि अब कहा ?

घोरा०–मैं जरा थाह तो पाऊं तुम मुझसे कराना क्या चाहती हो ?

स्त्री–आप कहते हैं–पाप लेकर पुण्य लुटाना, सुख देकर दुःख मोल लेना साधुओका काम है; पर मै पूछती हू, आपके पास कुछ पूजी भी है या खाली दुकान खोले बैठे हैं ?

घोरा०–एक बार जांचकर देख क्यो नहीं लेतीं ?

स्त्री–अच्छा, तो क्या मेरे सुखके लिये अपना यह सुखमय ससार कुछ दिनके लिये छोड सकेगे?

(घोरानद चुप हो जाता है।)

बड़े सोचमें पड गये, क्यो? मै कह दू आप क्या सोच रहे हैं?

घोरा०–कहो।

स्त्री–आप सोच रहे है यह मठ, यह मान, यह सुख, यह स्वर्ग एक सूखे-साखे परोपकारके लिये क्यो छोडें? और कुछ न सही, मेरे गुरु बनना स्वीकार कर ले–आपकी सेवामें मै अपना जीवन उत्सर्ग कर दूगी।

घोरा०–(हर्ष और विस्मयके साथ) है! कहती क्या हो? मगर... मगर...

स्त्री–डरिये मत। मै हू। मेरे रहते आपको मगर खा नहीं सकता। मै शिष्या बननेके लिये तैयार हू पर संन्यास लेनेसे पूर्व मनसे सब इच्छाए निकाल फेंकनी चाहियें। एक इच्छा घर किये है, निकलती नहीं।

घोरा०–सुनू तो वह कौनसी इच्छा है?

स्त्री–वे सब बातें मै पीछे कहूंगी। फिलहाल मेरे लिये इतना करे–यहाका भार शिष्योको सौंपकर मेरे साथ चले। वह आपका चर आ रहा है। उससे कहा था–पाच बजे आना, साथ चलूगी और चार बजे यहा चली आयी। जाती हू। अगले स्टेशनपर आपकी राह देखूगी।

(तेजीसे प्रस्थान)

घोरा०-कैसी चतुर औरत है! इसी रजनीके पीछे प्रमोद पागल था न। जरा देखूं तो, इसे देखकर कहा रहती है उसकी गुरुभक्ति। लेकिन-(सोचता है।) भूमानंद बहुत धूर्त है। आज-कल किसका विश्वास! पर है वह बडा शिष्य, हक उसका है-(रुककर) क्या करूं। मंगला! सदानदको बुला।

(भूमानदका प्रवेश)

घोरा०-उससे तुम्हारी मुलाकात हुई थी?

भूमा०-उसने मुझे खूब चकमा दिया!

घोरा०-केवल चकमा ही दिया! मुंहपर लात नहीं मारी?

भूमा०-(काठ-सा होकर) किस अपराधके कारण मुझे...

घोरा०-नहीं, नहीं, अपराध तो सब गुरुका है। तुम्हें तो सिर आंखोंपर बैठाना चाहिये, कुडलिनी जगाकर जो लौटे हो।

भूमा०-मैं तो गुरुकी आज्ञासे-

घोरा०-स्त्रीके पीछे दौडा था। जिसका दिल इतना कम-जोर है, जो जरासे पानीमें मिट्टीकी डलीकी तरह गल जाता है वह साधु बनने ही क्यो चला था, भीख मांगने क्यो न निकला!

(भूमानद चरण पकडना चाहता है।)

(पीछे हटकर) मै शुरूसे देखता हू-स्त्रियोको देखते ही तुम ठकसे रह जाते हो। जाओ, चले जाओ यहासे, तुम मेरे शिष्य कहलाने योग्य नहीं।

(सदानदका प्रवेश)

(सदानदसे) वत्स! मै तीर्थाटन करने जा रहा हू। यहां-

का सारा भार तुमपर रहा। देखो, गुरुके नामपर धब्बा न लगने देना।

सदा०—श्रीचरणोकी सेवाके बिना हम लोग कैसे जीयेंगे?

घोरा०—वत्स! अधीर मत हो। मेरी आज्ञाका पालन करो।

(प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—गुरुके कुटीरके पास एक चबूतरा

(चबूतरेपर सत्यव्रत बैठा है। अनायास सोमदत्त कहीसे आकर उसके पास बैठ जाता है। कुछ देर दोनो चुप रहते है। उसके बाद)

सत्य०—यह क्या बात है सोमदत्त! मेरे भीतर कभी कोई कहता है—त्यागकी सूखी सासोसे तूफान उठाकर शत्रुओंको फूसकी तरह उडा दो, और मैं तनकर खडा हो जाता हू—कहता हूं, दुष्टो! तुम मुझपर विजय नहीं पा सकते, मन, तू चाहे जैसे मुझे नचा नहीं सकता; पर दूसरे ही क्षण देखता हू, धारमें पडकर कहा-से-कहा बह गया हू। यह कैसी खींचातानी है!

सोम०—मुझे तो यह सब कुछ नहीं होता, केवल सब सूखा-सूखा जहर-सा लगता है।

सत्य०—(सुना अनसुना करके) विजयको उदार, महान् देवतुल्य कहते न थकनेवाले लोगो! एक बार आकर देख जाओ,

(हृदयको टटोलकर) इस कोयलेकी खानको देख जाओ। है यहां कही कुछ प्रशंसनीय! सोचा था-सोचा था कि जिन प्रवृत्तियोको मोड नहीं सकूगा, उनका खून कर डालूंगा, किंतु नहीं, मेरा नहीं-यह किसी विरले महारथीका काम है, इन दुर्बल हाथोसे इसे कर दिखाना, सारी दुनियाको हथेलीपर उठा लेना है।

सोम०-मैं तो भाई होनीके फेरसे यहां चला आया-अब तो यह फंदा गलेमें पड़ गया। उपाय क्या?

सत्य०-(सोमदत्तकी बातोसे ऊबकर) देवव्रतसे दो बाते कर जी कैसा हलका हो जाता है। देवव्रत! तुम्हारा हृदय है इस्पातका, हम लोगोंका है काठका, तुम्हारे भीतर जल रही है आग, और हम लोगोके भीतर जमी है राख।

सोम०-(तनककर) तुम उसपर मरते हो। मुझे तो वह बड़ा अभिमानी दिखायी देता है। जब देखो, अपनेको शुकदेव मुनि-जैसा बघारने बैठ जाता है।

सत्य०-(उसके कधेपर हाथ रखकर) भाई, मैं जरा एकातमें रहना चाहता हूं।

सोम०-तुम्हें बुरा लगा, लगा करे-लो, मैं जाता हू।

(चिढकर प्रस्थान)

सत्य०-(कुछ देरतक शून्यकी ओर ताकते रहनेके बाद) कैसा घना अंधकार है, कहीं जुगनूतकका प्रकाश दिखायी नहीं देता। (फिर वैसे ही ताकने लगता है) आज भादोकी अमानिशा है। कहते है, भादोंकी अमानिशा बहुत भयानक होती है, किंतु

हो सकती है इसकी तुलना उस पुरातन अमानिशासे जिससे मेरी आत्माकी दुनिया आच्छादित है? (आह भरकर) नहीं, नहीं हो सकती। प्रकाश-पुत्रोंका वहां प्रवेश निषिद्ध है, निशाचरोंको सख्त आज्ञा है कि जहां वे उन्हे पावे खा जायं। (अवसादसे आखे डबडबा आती है। कुछ देर बाद हृदयको चीरकर एक पुकार उठती है।)

तिमिर चीर–

हो मां प्रकाशमान !

नित उठ नभ पर उषा देखता,

भीतर कोई चिल्ला उठता

कब होगा उर-निशि अवसान?

हो मां प्रकाशमान !

अर्द्धरात्रि जब करता ध्यान,

दर्शन बदले होता भान,

भूक रहा उर भूखा श्वान।

हो मां प्रकाशमान !

नयन नीरसे सागर भरता,

जीवन विष सम लगने लगता,

और न कलपा मेरे प्राण।

हो मां प्रकाशमान !

अन्तरका हो शतदल विकसित,

पद-सौरभसे जीवन सुरभित,

मांगे 'बिन्दु' यही वरदान।

हो मां प्रकाशमान !

(भक्ति उद्भ्रात भावसे आकाशमे प्रवेश करती है। पीछे-से उदासी दौडती हुई आकर उसके पैर पकड लेती है। वह धडामसे गिर पडती है।)

सत्य०–(पलभर बाद) हृदय-प्रदेशकी लौह-दीवारोसे लडलड-कर मेरी टूटी आहे पहुच सकीं! मां! पहुच सकीं तेरे चरणो-तक? –जरा ध्यान करू, जी वहुत उचाट हो रहा है।

(नेपथ्यमें)

कबतक? –और कबतक तू अनत मरु-थलमें मधु वसतके लिये ताकता रहेगा, बालूसे तेल निकालनेके लिये सिर पटकता रहेगा? चल! क्यो निराधार आशाओकी दुनियाकी ओर टक-टकी बाधे बैठा है।

(ध्यानकी विफल चेष्टाओसे सत्यव्रतका मन दग्ध होने लगता है, शिराए तन जाती है, चेहरा तमतमा उठता है।)

सत्य०–कहांसे? कहासे ये तीर आ-आकर चुभते है?

(काम आकाशसे वाण फेंकता है।)

(हठात् उसकी दृष्टि दो सभोग करती बिल्लियोपर जा पडती

है। वह उनकी ओर रसपूर्ण दृष्टिसे देखता है। पूर्व-सस्कार जाग उठते हैं।)

(नभमें आसक्तिका नाचते हुए आविर्भाव)

(किसीकी छायामूर्त्ति देखकर) यह क्या? अजलि मर गयी—उसके मृतक शरीरसे अक्षय चिपटा है!

(आकाशमें मोह दलबलसहित दिखायी देता है।)

(भर्राये स्वरमें) प्रिये! मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हारे कोमल प्राणोपर कितने आघात किये हैं। तुमने रो-रोकर कहा, पैरोपर गिर-गिरकर रोका, पर मैंने—

(प्रज्ञानाथका प्रवेश)

प्रज्ञा०—सत्यव्रत!

सत्य०—(चौंक पडता है)

प्रज्ञा०—तुम्हारी स्त्री तुमसे ही प्रेम करती थी या और किसी-से भी?

सत्य०—और किसीसे? शायद ईश्वरसे भी नहीं।

प्रज्ञा०—तुम भी उससे वैसे ही प्रेम करते थे?

सत्य०—(चुप रहता है)

प्रज्ञा०—तुम भगवान्से भी वैसे ही प्रेम करते हो?

सत्य०—(सिर झुका लेता है।)

प्रज्ञा०—तुम्हारे हृदय कै है सत्यव्रत?

सत्य०—एक।

प्रज्ञा०—तब तुमसे तो तुम्हारी स्त्री अच्छी थी न, जो अपना

संपूर्ण हृदय तुम्हें दे सकी थी? मुखमें चावल लेकर जो चींटी चीनीकी ढेरीपर फिरती है वह क्या चीनीका आनंद पा सकती है? तुम साधक हो—तुमको इतना मोह!

सत्य०—(लज्जासे पृथ्वीमे गड जाता है, कुछ देर बाद सजल-नयन होकर)—देव! अंधकारके अथाह समुद्रमें और कबतक मैं थपेड़े खाता रहूंगा?

प्रज्ञा०—इसका उत्तर तुम अपनी दुर्बलताओसे पूछो—ससारको हिला देनेकी शक्ति तो तुम तभी प्राप्त कर सकते हो जब तुम्हें ससार हिला न सके।

सत्य०—प्रभो! इतने दिनोसे साधनामें लगे रहनेपर भी मेरे दिन पहाडसे क्यो लगते है?

प्रज्ञा०—इसलिये कि शरणागतिकी कुजी अभी नहीं मिली—तुम जिसे खोज रहे हो उसे देवव्रतने पा लिया है और इसीलिये वह आधीके साथ तिनकेकी तरह उड़नेके बदले आधीके सग गाता है।

सत्य०—वह वीर है—मेरी तो नस-नसमें छुरी चल रही है।

प्रज्ञा०—जानते हो—यह छुरी किनपर चल रही है?—उन सस्कारोपर जिन्हें बहुत लाड़-प्यारसे पाला-पोसा गया है, यह चिल्लाहट उन प्रवृत्तियोंकी है जो त्यागकी चोटसे भूखी मर रही है। इससे प्रत्यक्ष है न सत्यव्रत! कि प्राणोका अभी समर्पण नहीं हुआ—वे भोग-विलासका उत्सर्ग करना नहीं चाहते!

सत्य०—अब मुझे पता चला है कि शरणागतिको जीवनमें उता-

रना कितना कठिन है।

प्रज्ञा०—बिना लड़े, बिना काटोंपर चले कभी किसीने कुछ पाया है सत्यव्रत?

सत्य०—श्रीचरणोमें मैं जो निवेदन करना चाहता था—

प्रज्ञा०—वही मैं तुम्हें समझा रहा था कि तुम अपने किये-का फल तुरत देखना चाहते हो। इसीलिये उदासी झट घुस आती है। मैं पूछता हू कि तार-बिजली आदिका आविष्कार क्या दो दिनोंकी साधनासे ही हो गया था? जहा कामना-वासनाकी गगन-चुंबी तरगें उठ रही है वहा शाति, समता आदिको प्रतिष्ठित करना क्या हसी-खेल है?

सत्य०—यह दास एक अमृत-दृष्टिका भूखा है।

प्रज्ञा०—वत्स! पृथ्वी जैसे वर्षाके लिये, पुष्प जैसे प्रकाशके लिये ताकते रहते हैं वैसे हाथमें पात्र लिये ताकते रहो, समयपर स्वाति अवश्य बरसेगी।

(सत्यव्रत जिज्ञासु-दृष्टिसे गुरुकी ओर ताकने लगता है।)

प्रज्ञा०—कुछ पूछना चाहते हो?

सत्य०—हृदयमें एक प्रश्न है।

प्रज्ञा०—क्या, कहो।

सत्य०—क्या मैं साधनाके अतिम सोपानतक पहुंच सकूगा?

प्रज्ञा०—इसमें भी कोई शक है? पीछे दृष्टि डालकर देखो तो प्रत्यक्ष पता लगेगा कि किसीका गुप्त हाथ तुम्हारे जीवनको ऐसे सचालित करता आ रहा है कि समयपर तुम उसके हाथके विश्वस्त

यंत्र बन सको। अब तुम्हारा साधनामें प्रवेश हो चुका है, संघर्ष तो होगा ही, पर यदि तुम लक्ष्यपर अंगदकी तरह जमकर खड़े हो जाओ तो रावण भी भाग जाय।

सत्य०—(चरणोपर सिर रखकर) गुरुका आशीर्वाद सदा सुदर्शन चक्रकी तरह मेरी रक्षा करे!

(पर्दा गिरता है।)

चौथा दृश्य

स्थान—प्रमोदके गुरुका देव-मंदिर

(भानुदास अपने गुरुभाई गोपालदाससे बातें कर रहा है।)

गो०—मुझे बड़ा अचरज होता है, जिसे कोई ३० वर्षोंमें भी न कर पाता उसे तुमने तीन दिनोंमें कर कैसे डाला?

भानु०—(मुसकराता है।)

गो०—बलिहारी। कानोंमें गुरुमंत्र पड़ते एकदम कायापलट। भविता देखकर ही महाराजने तुमरा नाम भानुदास रखा था। कोई परिचित देख ले तो उसे बिसास ही न हो कि तुम ही प्रमोद बाबू थे।

भानु०—प्रमोदका मेरे सामने नाम मत लो, वह तो मर चुका।

गो०—उस दिन वह पगली तुमरी देहियापर थूक गयी और तुमने चूं तक नहीं की! तुममें इतनी समता आयी कहांसे?

भानु०—सब गुरुकी कृपा है। जब पर्वतप्राय पापका बोझ

ढोनेवाला क्षणार्धमें उनकी दयासे पुण्यात्मा हो सकता है तो मुझमें तनिक समताका आ जाना क्या असभव है?

गो०–पर कैसे भाई मेरे?

भानु०–अभ्याससे, मननसे। गीतापर प्रवचन करते हुए महाराजने कहा था, साधनामें सबसे कठिन है समताको पाना। जो इसे पा गया वह सब कुछ पा गया। तभीसे प्रण कर बैठा, चाहे जो हो समता नहीं छोड़ूंगा।

गो०–अपने राम तो सब उसके भरसापर छोडकर बैठ गया है। जो वह करे, जैसे रखे। तुमरा हिरदे भाई सरदा भगतिसे कैसा भरा है? (उत्तमदास प्रवेश करके) –देखो, जैसे मेरे कमडलुमें जल भरा है।

भानु०–तुम्हें यहा किसने बुलाया था?

उत्तम०–तुम्हारी समताने।

भानु०–मैं कहता हूं, तुमसे जब मेरी नहीं पटती तो मेरी बातोंमें दखल जमाने क्यो आते हो?

उत्त०–मै गोपालदासको उसकी भूल बताने आया हू।

भानु०–तुम क्या अपनी सब भूलें जान गये हो?

उत्त०–चुप। मै बडा शिष्य हू–तुम शिक्षा पा सकते हो, दे नहीं सकते।

भानु०–कहा है, जो साधनामें बढे, वही बडा।

उत्त०–ओ! अब समझा–अब समझा कि तुम किस मतलबसे दिन-रात गीता घोटा करते हो। मैं कहता हू, तुम गीता रटना

छोड़कर "गद्दी, गद्दी" रटो।

भानु०—(उफनकर) हटो मेरे सामनेसे। जाने दो मुझे।

(उत्तमदास रास्ता रोककर खडा हो जाता है।)

देखो उत्तमदास, मेरी समताका बाध अब टूटा जाता है।

उत्त०—अभीतक टूटा नहीं। (कमडलुका जल उसपर उडेलनेके लिये हाथ बढाता है। भानुदास उसका हाथ उमेठकर कमडलु फेंक देता है। उत्तमदास हो-होकर हस पडता है।)

उत्त०—देखा गोपालदास! कैसा दिखाया तुम्हें समताका थियेटर। आओ चलें।

(गोपालदासका हाथ पकडे प्रस्थान)

भानु०—(आग-वबूला होकर) अभी जाकर मैं महाराजसे कहूगा। वही रहे यहा या मैं ही—(जाते-जाते खिसियाकर बैठ जाता है।)

साधारण मनुष्यको पूछता कौन है—पूजा होती है या तो दानवकी या देवताकी। जब दानव बनकर पूजा नहीं पा सका, सोचा, देवता बनकर देखू। पर मेरी किस्मत—

(दिनकर स्वामीका प्रवेश)

दिन०—तीन दिनतक आप लोगोके यहा अतिथि बनकर रहा। आज प्रस्थान करूगा। सच्चे साधक यहां एक आप ही है। इसीलिये जरा सत्सग करने चला आया। कुछ आप-बीती सुनानेकी कृपा करेंगे?

भानु०—क्या कहूं, जमीन-आसमान एक करके भी कुछ अभी हाथ नहीं आया। दिन-रात मनसे युद्ध कर रहा हू।

दिन०—मनसे युद्ध कर क्या कोई उसे पछाड सकता है?

भानु०—जब मनुष्य अग्नि, जल, वायुको वश करनेमें समर्थ हो सका है तो क्या मैं अपने मनको भी काबूमें नहीं ला सकूगा?

दिन०—यही तो बात है। मनुष्य रावण-सा रूप धारण कर इन्द्र, वरुण, अग्निसे अपना कार्य करानेमें जितना सफल हो सका है उतना अपने भीतर रामराज्य स्थापित करनेमें सफल नहीं हो सका। बरसती आगसे जूझते, दनादन चलती गोलियोके सामने छाती तानते आप लाखोको देखेंगे पर मन-व्याघ्रकी पीठपर आसन जमानेवाले कहिये दुनियाम कितने है?

भानु०—आप किस गुरुके पल्ले पड गये जिन्होने आपके कठ-तक असभवका पाठ ठूस दिया है।

दिन०—आपसकी बातोमें आप गुरुको क्यो ले आये? मै सब सह सकता हू पर गुरुनिंदा सहन नहीं कर सकता।

भानु०—नहीं सह सकते तो रास्ता क्यो नहीं पकड़ते—टरटर क्यो किये जा रहे है?

दिन०—मै जान गया आप कितने पानीमें है—आपके पास दिखावेका पहाड है, आपकी साधना पत्थरपर उगा पीपलका पेड़ है। मै तो जाता हू पर कहे जाता हू कि मेरे गुरुके दरबारकी कुतिया भी गीताका पाठ करती है।

भानु०—मेरे गुरुके दरबारमें गधा भी भागवतका पाठ करता है।

दिन०—शायद उनमेंसे आप भी एक—

(प्रस्थान)

भानु०—इन चड़ूलोका झाड़ू खाना और चू नहीं करना—इसीका नाम है समता। जहर खाकर मरना नहीं आया—साधु बनने चला था। ना, कुछ करना होगा, कुछ करके दिखाना होगा—(सोचकर) तो चल दूं यहांसे।

(जाते-जाते)

उत्तमदास, मैं जाता हूं और तभी लौटूंगा जब तुझपर बमकी तरह बरस सकूं।

(प्रस्थान)

(दूसरी ओरसे रजनी और घोरानंदका प्रवेश)

घोरा०—वही था तुम्हारा प्रमोद जो अभी-अभी यहांसे निकला।

रजनी—(चमककर) वह प्रमोद था? प्रमोद? सच कहते हैं? सच?

घोरा०—विश्वास नहीं होता?

रजनी—हां, विश्वास नहीं होता—कलका प्रमोद जो 'हाय रुपया, हाय रुपया' के सिवा और कुछ जानता ही न था, वह आज 'हा राम, हा राम' करने लगेगा, यह विश्वास नहीं होता। कल जिसका हृदय भूतोका बसेरा था, आज देव-मंदिर हो जायगा यह विश्वास नहीं होता। मैं पूछती हूं, संन्यासीका बाना पहन लेनेसे ही क्या वह अपने अलकतरेसे काले अंतरको धो सकेगा?

घोरा०—मैं जाता हूं। ये बातें उससे ही पूछना, वही इनका खासा उत्तर देगा।

रज०—इस परदेशमें आप मुझे अकेली छोड़कर चले जायेंगे—

जा सकेंगे ?

घोरा०—तुम क्या मेरे पास दुकेली आयी थीं ? तुम चाहती क्या हो ?

रज०—कुछ दिनोंतक और साथ रहें, सब पता चल जायगा।

घोरा०—मैं भाप गया तुम क्या चाहती हो ? —तुम चाहती हो जबतक प्रमोद हाथ न आये इसे हाथसे जाने न दूं। ठीक है न ?

रज०—बिलकुल गलत।

घोरा०—इसका प्रमाण ?

रज०—(कमरसे छुरी निकालकर) इसका प्रमाण है यह। घरसे यही प्रण करके निकली हू कि इसे उसकी छातीमें घुसेडूंगी या अपनी।

(तेजीसे प्रस्थान)

(घोरानद विमूढ होकर पीछे-पीछे जाता है।)

पांचवां दृश्य

स्थान—सत्यव्रतका पर्णकुटीर

(भूमिपर कृशतनु सत्यव्रत)

सत्य०—'अब न सहे जाते हैं बंधन' द्वार खोल मा ! द्वार खोल ! ओह ! मैं जैसे आगमें पापड़की तरह सेका जा रहा हू।

(जलनसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर लोटने लगता है।)

(कुछ देर बाद अदृश्य लोकसे एक क्षीण आलोक आकर उसके मुखपर पडता है। मातृस्पर्शसे रुग्ण शिशुको जो सुख मिलता है वह वैसा ही कुछ अनुभव करता है। कुछ क्षण बाद गद्‌गद होकर)

मां! तुझे मेरी खबर है! इस दीनपर तेरी नजर है! तमका कर विनाश, हो मां तू प्रकाश!

यह क्या! अकस्मात् आकाश मेघाच्छन्न क्यों होने लगा? प्रलयंकर मेघ क्यो घुमड़ने लगे? वह—वह ताडका राक्षसी-सी आधी गरजती चली आ रही है। क्या आधी, पानी पृथ्वीसे युद्ध छेड़नेपर तुले है? (सामने देखकर) **मार्ग बाणोंसे बिछा पडा है।** (ऊपर ताककर) **वे कौन! वे कौन है?** (भयसे आखे बद हो जाती है।) **ऊह! ऊह! कैसे उग्रनख...उग्रदत... चिताकी अग्निसी लपलपाती जिह्वावाले... महाकाय... पिशाचगण खड़े है!** (आखे खोलकर) **ये क्या? ये क्या मेरे खूनके प्यासे है? सब एक संग मुझपर टूटनेके लिये जुटे है? यह क्या?... यह क्या?...मेदिनी कापने क्यो लगी? वह कौन है? वह कौन वृत्रासुरकी तरह पृथ्वीको फाडनेके लिये दौडा चला आ रहा है!**

(घोर वज्रनाद)

(सत्यव्रत सज्ञाशून्य होकर गिर पडता है। कुछ देर बाद तमको फाडकर नभोमडलसे देवबालाए किरणोके पखोपर चढकर उतरती है और मनको मथ डालनेवाले स्वरमे गाती है।)

तुम तो चले हो युद्धमें जय प्राप्त करनेको यहां—
भगवान्‌के आह्वानपर निर्भय विचरनेको यहां—
शिव-सत्यके हित प्राणका बलिदान देनेको यहां—
होने अमर, करने समर औ' देखने प्रभुको यहां ॥

हे वीर ! साधन-मार्गपर कसके कमर आगे बढ़ो ।
मनके खुले मैदानमें—होकर खड़े—खुलकर लड़ो ॥

यों शत्रुको देकर चुनौती युद्धमें आये यहां ।
कफनी लपेटे मौलिपर हे वीर ! जूझो, तुम यहां ॥
दिल है न जिनका लौहसम—उनके लिये रण है कहां !
सकते न ममताको जला जो—टिक न सकते वे यहां ॥

हे वीर ! साधन-मार्गपर....

है चाह जीवनमें अगर कुछ कर दिखानेकी भला—
निर्भीक हो रिपुसे कहो संकल्पकी ज्वाला जला:
"आंधी चले, पत्थर पड़े, धरती फटे, बिजली गिरे,
बरसे प्रलयकी आग, गरजे काल, कलि हमला करे",—

हे वीर ! साधन-मार्गपर....

"निज लक्ष्यसे तब भी कभी पग भर नहीं पीछे हटूं:
मैं मर मिटूं निज टेकपर—रणमें न पीछे पीठ दूं ॥"
होकर अटल हिमशैलसम जो वीर प्रण यों कर सकें—
भगवान् क्या वैकुण्ठमें सुध भूल उनकी रह सकें ?

हे वीर ! साधन-मार्गपर....

सत्य०—(चेतनाके लौटनेपर) मैं कहां हू ? वे कहा गयीं ? यह कौनसा लोक है ? (फिर ध्यानस्थ हो जाता है)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

स्थान—मायाका किला

(माया और अगारोपर मुसकानेवाली आशा)

आशा—एकपर हमारा अधिकार नहीं हुआ तो क्या—एककी हस्ती क्या है, एक हमारा क्या कर सकता है ?

माया—यही—सदासे यही भूल हम करते आ रहे हैं। इस एकके भीतर ही छिपकर भक्ति, वैराग्य, ज्ञानका सोता पृथ्वीके वक्षस्थलपर बहता चला आ रहा है; इस एकके कारण ही इतने दिनोंके अथक परिश्रमके बाद भी हम उनका नाम पृथ्वीसे मिटा

नहीं सके; इस एकके भीतरसे ही भारतीयोका भारत अपने गौरवकी रक्षा करता आ रहा है। तुम क्या जानो......तुम क्या जानो—वह मोह आ रहा है, आओ, जरा छिपकर उसकी बातें सुनें।

(छिप जाती हैं। दग्धावस्थामें मोहका प्रवेश)

मोह—सारा शरीर झुलस गया है। जहां जाता हूं—जहा जाकर छिपता हू वहीं दुरात्मा ज्ञानका अग्निवाण आकर शरीरको छेद डालता है। वैराग्य तो धीरे-धीरे जनमेजयकी यज्ञशालाकी तरह रूप धारण करता चला जा रहा है और हमारी सेना उसमें सर्पाहुतिकी तरह गिर रही है।

(लडखडाते हुए लोभका प्रवेश)

लोभ—सुना है मोह? सुना है विजयका प्रण! यह वह 'क्रतु' है जो उसके लिये अनतका दरवाजा खोल देगा—यह 'वह अग्नि-शिखा' है जो शैल-शिखरको अतिक्रम कर इसके अन्दर विज्ञानकी विभूतियोको खींच लायेगी।

(हतप्रभ क्रोधका प्रवेश)

मोह—क्रोध! तुम अपनी आखोंसे चिनगारिया फेंककर उसे भस्म क्यों नहीं कर डालते?

क्रोध—(आह भरकर) तुम्हीं बताओ, जहां तिनके नहीं है वहा आग बरसाकर मै किसे भस्म करूंगा? आश्चर्य है, हम सबने मिलकर वार किया, फिर भी वह बच गया!

(क्षत-विक्षत कामका प्रवेश)

काम—जूझता—जूझता जरा वह अपने बलपर तब हम देखते

उसे। शरणागतिका–क्या कहूं–उसे ऐसा साधन मिल गया है कि करालवदनाकी सारी शक्ति उसके पीछे आकर खड़ी हो जाती है और हमारी सेना सुलगती आगसे निकलते धुएँकी तरह उड़ जाती है।

(श्रीहीन वासनाका प्रवेश)

वास०–उससे भी भयंकर है उसका गुरु। जबतक उसकी पीठपर उसका हाथ है, हमारी शक्ति फुहारेके जलकी तरह गिर-गिरकर चूर होती रहेगी–हम उसे नष्ट नहीं कर सकते।

(अहकारका प्रवेश)

अहं०–है तुममेंसे कोई जो प्रज्ञानाथको परास्त कर सके?

(सब सिर झुका लेते है।)

अहं०–क्यो, सिर क्यो झुका लिया?

मोह–जहां अन्धकार है, वहीं हमारा प्रवेश है–जिसका शरीर सूर्यके रथकी तरह देदीप्यमान हो रहा है उसका–

सब–हम क्या कर सकते है?

माया–(बाहर आकर) डूब मरो! यहा क्यो खडे हो?

(अहकारसे) अमात्य! तुम अपनी शक्तिसे इनमें जान क्यों नहीं फूकते? तुम क्या सोच रहे हो?

अहं०–इन्हे मै फिर खड़ा तो कर सकता हू पर मै यही सोच रहा हू कि विजयके हृदयकी भक्ति-गगा जब शातिकी यमुना और शरणागतिकी सरस्वतीका योग पाकर उद्दाम गतिसे अनतकी ओर प्रधावित होगी तब क्या उसके सामने ये ठहर सकेगे?

माया–यह मै अपने मत्रीके मुखसे सुन रही हू।

अह०—आप देखती है विजयके भवनके दरवाज किस तरह धडा-धड खुलते चले जा रहे है और उनमेंसे दैवी सपदाए किस तरह घुसती चली आ रही है, देखती है आज उसकी पीठपर कितनोका हाथ है—इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवता, समस्त ऋषिगण, सारी भक्त-मंडली, सब-के-सब उसे लक्ष्यपर पहुचानेके लिये कैसे तत्पर है—कितने आतुर है ?

माया—तो मै युद्ध स्थगित करनेकी घोषणा कर दू।

अहं०—कदापि नहीं—जबतक अहकार जीता है, युद्ध जारी रहेगा। कैसा भी कडे-से-कडे हृदयवाला साधक क्यो न हो, सदा उसकी चेतना एक स्तरपर टिक नहीं सकती; तारके टूटते, मै तमस्‌को भेजूगा और उसके बाद निराशाको कहूगा कि उसे जाकर ऐसे झकझोर डाले जैसे कबूतरको बाज। फिर तो हम देख लेगे। कितने शिखरके पासतक पहुचकर फिसले है यह तो—

माया—ठीक है। छलसे, बलसे, कौशलसे, जैसे भी हो उसे मजिलतक पहुचने मत दो। पग-पगपर प्रतिरोध करो, चप्पा-चप्पा भूमिके लिये जी जानसे जूझो। याद रखो, यदि एक भी व्यक्ति सत्यको पा जायगा तो दुनिया उसके पग पलकोसे झाडेगी, धरती उसका चरण हृदयमें धारण कर अपनेको धन्य मानेगी। जहां वह खडा होगा लाखोको भगवान्‌मय बना देगा। प्रतिरोध करो—प्रतिरोध करो। (कहते हुए प्रस्थान)

(सब उधर ही ताकने लगते है।)

(पर्दा गिरता है।)

सातवां दृश्य

स्थान—वनभूमि

(भग्नहृदय सत्यव्रत एक वृक्षके साथ पीठ लगाये शून्यकी ओर ताक रहा है।)

सत्य०—जो पुरातन थे वे पतझड़के झोकेमें उड़ गये, परन्तु किसी नूतनके विकासका है कहीं उल्लास! सब वृक्ष ठूंठकी तरह खड़े हैं; ऐसा ही है आज मेरा जीवन। (फिर शून्यकी ओर ताकने लगता है।) क्या मेरे आकाश-कुसुम आकाशमें ही सूख जायेंगे, उनकी दो-चार पँखुड़ियां भी जमीनपर टटोलकर नहीं पाऊगा? सत्य, तुझे पानेके लिये, तेरा पूर्ण प्रकाश देखनेके लिये जवानी मैंने काटोपर चलकर, भालोपर सोकर बितायी; किन्तु.... किन्तु (आसू झरते हैं) आशा मुझे छोड़ रही है, निराशा घेर रही है, (आह भरकर) तो फिर....तो फिर जीऊ मै किसके लिये, जीवनका बोझ ढोऊं किसके लिये—यहीं, बस यहीं इस नाटकका पर्दा गिर जाय!

(आखे गगा बनकर बहती है।)

(देवव्रत प्रवेश करता है, पर सत्यव्रतकी दशा देख उल्टे पाव लौट जाता है और गुरुको खबर देता है।)

सुन! मेरी मां! सुन, मेरे हृदयकी अतिम पुकार सुन! मैं मरू पर मरनेपर भी मेरी आखें....भूखी आखें खुली की

खुली रह जाय (बिलखते हुए) रेगिस्तानके.....बालुओपर.....
मेरे प्राण निकले ....पर मरनेपर भी....मेरे..... चाम-
से....तेरा नाम निकले।

(प्रज्ञानाथका प्रवेश)

प्रज्ञा०—सत्यव्रत!

सत्य०—(चुप रहता है।)

प्रज्ञा०—क्यो, चुप क्यो हो—दृष्टि नीचे क्यो कर ली? वत्स! कहो तो क्या हुआ है?

सत्य०—समर्पणकी मांग है कि मेरे पैर आगे बढें, पीछे हटें, या अटके रह जायं, मै चूतक न करू। किंतु....किंतु यह झुलसा हुआ जीवन—

प्रज्ञा०—छिश! इसमें हताश होनेकी कौनसी बात है? साधना-के रणरंगमें जय-पराजय तो साधकोका खेल है। द्वन्द्वकी गोदमें पलकर ही उनकी साधना फलती और फलती है। तरस उनपर खाना चाहिये जो राईभर सुखके लिये पहाड़-सा दु:ख ढोते है, जिनका वर्तमान जलते बीत रहा है और भविष्यमें जलनेके लिये ईंधन बटोर रहे है—तुम क्यो रोते हो—तुम क्यो पछताते हो?

सत्य०—देव, इस युद्धका कभी अन्त होगा?

प्रज्ञा०—क्यों न होगा—देखी है ऐसी कोई निशा जिसके बाद उषा न आवे, कोई घटा जो न फटे, कोई कुहासा जो न छटे, कोई आसू जो न सूखे, कोई तूफान जिसके बाद विजय-धनु न दिखायी दे? जो परिस्थितियोके चक्रपर चक्कर काटता, चकराता

नहीं रहता, बल्कि उनके घिरावको तोडकर, व्यूहको भेदकर अपने लक्ष्यपर पहुचता है वही तो वीर है।

सत्य०—मुझसे शायद अब नहीं हो सकेगा।

प्रज्ञा०—क्या नही हो सकेगा? —मै तुम्हे पहाड ढाहनेको नहीं कहता, समुद्र लांघनेको नहीं कहता; केवल, साधनाकी जिस चोटीपर चढ चुके हो उससे अपनेको च्युत मत होने दो।

सत्य०—मेरी हालत इस समय—

प्रज्ञा०—मै तुम्हारी हालतको खूब समझता हू। मै जानता हू, ऐसा कोई साधक नहीं जिसके दिलको निराशा न तोड दे, ऐसा कोई सयमी नहीं जिसकी हिम्मत हिमालय-सी असफलताओसे टकराकर चूर-चूर न हो जाय। पर पुत्र! (सिरपर हाथ फेरते हुए) महत्-पदकी प्राप्ति हँसी-खेल नहीं, उसके लिये जिस दावानलमें कूदना पडता है उसकी आचको सहनेकी सामर्थ्य और सौभाग्य सबको सुलभ नहीं होता। दुनियाका इतिहास उठाकर देखो, जो भगवान्‌के जितने निकट पहुच सके है उन्हे उतनी ही कठिन परिस्थितियोका सामना करना पडा है।

(सत्यव्रत ऐसे एक लबी सास छोडता है मानो उसकी आधी जान उसके साथ निकल जाती है।)

प्रज्ञा०—आज तुम्हे हो क्या गया है?

सत्य०—हृदय निराशाका क्रीड़ा-स्थल बन गया है।

प्रज्ञा०—(स्वर बदलकर) तुम निराशाको ढोल पीटकर बुलाओगे तो वह क्यो न आयगी, बिल्लीके सामने चूहे बनोगे तो वह क्यों

न खायगी ? याद रखो, खल तुम्हारी दुर्बलताओंपर तरस नहीं खायेंगे।
(सत्यव्रतकी आखोसे आसू ढलकते है।)

सत्यव्रत! मै तुम्हे आसू भरे, घुटने टेके, भिक्षुकोंकी भाति गिडगिड़ाते देखना नहीं चाहता...

सत्य०–(भर्राये स्वरमें) मैं गुरुके सामने नतजानु होता हूं–मेरे भीतर कुछ प्रवेश नहीं कर रहा है। मेरी दशा इस समय उस फूलसी हो रही है जो प्रकाशके लिये ताकते-ताकते धराशायी होनेको है। (चरणोपर लोट जाता है।)

(प्रज्ञानाथ उसके सिरपर हाथ रखकर शक्तिका सचार करते हैं, सत्यव्रत ध्यानस्थ हो जाता है, उसे उसी अवस्थामे छोडकर प्रज्ञानाथ चले जाते है)

सत्य०–(आखें खुलनेपर कुछ जागृत कुछ स्वप्न अवस्थामे) वह गौ कहा गयी? मै उस दिगंत-विस्तृत मरुभूमिको पार कैसे कर गया? (रुककर) धूपमें जलकर, प्याससे तड़पकर जब मैं उस दहकते बालूपर गिरा, तब वह गौ कहासे आकर, अपने स्तन मेरे सामने कर, खडी हो गयी! आह! वह अमृत-धार! मा! मां! (गद्गद स्वरमें)

कर मां! मेरा जीवन सच्चा।
तन कर सच्चा मन कर सच्चा,
रोआं-रोआं मेरा सच्चा,

प्राणोंका हो कण-कण सच्चा,
तनिक रहे ना यह घट कच्चा।
कर मां! मेरा जीवन सच्चा ॥

प्रतिछन सच्चा, प्रतिपल सच्चा,
भीतर सच्चा, बाहर सच्चा
होऊँ मां! मै नख-शिख सच्चा,
नहीं और कुछ उर है इच्छा।
कर मां! मेरा जीवन सच्चा ॥

हर हालत, हर अवसर सच्चा,
दममें दम है तबतक सच्चा,
सदा कसौटीपर मैं सच्चा,
बरसे जब रिपु भाला बर्छा,
कर मां! मेरा जीवन सच्चा ॥

पनपे साधन-पौधा अच्छा,
लगे फूल-फल उसमें सच्चा,
सोने जैसा होऊं सच्चा,
जननी! दे यह मुझको भिक्षा।
कर मां! मेरा जीवन सच्चा ॥

आठवां दृश्य

स्थान—पथमें

(घोरानद और रजनी)

रजनी—मैं पूछती हू, तुम सोना बने ही कब थे जो मिट्टीमें मिल गये ?

घोरा०—आखोंसे देख तो आयी थीं, सोना नहीं बन सका था तो लोग यूही पूजते थे ?

रज०—पूजते थे भेषको, तुम्हारे अन्दरके दानवको नहीं।

घोरा०—इस प्रकार बिच्छूकी तरह डंक मारना तुम्हें किसने सिखाया ? मेरे अन्दर दानव हैं या देवता—तुम जानती हो ?

रज०—महाराजके इतने दिनोके सत्सगसे इतना भी न जान पाऊगी ?

घोरा०—वहा मुझे किस बातकी कमी थी ? जरासी भूल, जरासे कुतूहलके कारण यह नौबत आ गयी। इसलिये कहा गया है 'क्षुरस्य धारा'—

रज०—(हाथ चमकाकर) हाय रे मेरे क्षुरस्य धारावाले—

घोरा०—तुम्हारे पेटमें ऐसी-ऐसी छुरी-कटारिया भरी थीं—किस शुभ घड़ीमें तुमने मेरे यहा पैर रखा था !

रज०—(खिसियाकर) प्रमोद नहीं मिला था, हार मानकर बैठ जाती—दिन-रात किसीके खोचे तो सहने न पड़ते। जो बदा होगा सो होगा। जाओ तुम—जाओ चले अपनी कैलाशपुरीमें।

घोरा०—बंद हो गया—एकदम बंद हो गया वहांका दरवाजा मेरे लिये। भूमानंदने ऐसी अफवाह उड़ा दी है कि मैं वहां मुंह भी नहीं दिखा सकता।

रज०—(हसी और रुलाई मिले स्वरमे) तो तृतीय नयन खोलकर उसे भस्म क्यो नहीं कर देते?

घोरा०—मुझमें अब वह शक्ति नहीं रही।

रज०—कहां गयी वह शक्ति?

घोरा०—तुम चाट गयीं।

रज०—(कटकर) इस बेशरमीसे तो अच्छा होता कि तुम अपना मुंह सी लेते। गलेमें डोरी लगाकर मरना नहीं आया, तुम्हारे पास दयाकी भीख मांगने आयी थी।

(छाती पीटती है।)

घोरा०—(सिटपिटाकर) क्षमा करो। लो, तुम्हे कहां मैं कुछ कहता हूं। मै अपनी तकदीरको रो रहा हू। यदि भूमानंद विष्ठाको राखसे ढक देता तो यह बदबू क्यो फैलती? आजकलके शिष्य—

(अर्द्ध-विक्षिप्त दशामें एक साधुका प्रवेश)

घोरा०—कौन है आप?

साधु—एक गुरुद्रोही।

घोरा०—गुरुद्रोही! गुरुद्रोही! भूमानन्द! तू ही क्या भूत बनकर मेरे पास आया है?

साधु—दीखता है, आपपर भी कोई भूत सवार है। ऐसेकी—

मैं किसी ऐसेकी खोजमें निकला था। खूब मिले। अच्छा, यह बताइये, धर्मके नामपर इतना अनर्थ हो रहा है फिर भी पृथ्वी उलट क्यों नहीं जाती? सूरज सब कुछ देखकर भी कुछ क्यों नहीं देखता—हंसता हुआ, चुपचाप सब कुछ सहता हुआ चला जाता है!

घोरा०—उसमें अब वह शक्ति नहीं रही कि अगारे बरसाकर सबको खाक कर दे। इसीलिये धर्मको, भगवान्‌को अब कोई नहीं मानता।

साधु—तो फिर दुनियाकी सब रीति-रस्में उलट जायं! माता पुत्रको दूधमें जहर पिलावे, भाई भाईके गलेपर छुरी चलावे, गुरु शिष्यको कपट सिखावे, विश्वासके सिरहाने प्रवचना पहरा दे, दयाके भीतर दगा, परोपकारके भीतर छल छिपा रहे।

घोरा०—असली बात बताते नहीं, खाली बके जा रहे हैं।

साधु—बताता हूं सुनिये। एक धनाढ्य गृहस्थके थीं दो सौतें। वाक्य-युद्ध होते-होते उनमें कभी-कभी मल्लयुद्ध भी हो जाया करता। जिस दिन वह तीर्थाटन करते समय अतिथि बनकर उनके यहां ठहरा था, यही हुआ। बस फिर क्या था—

घोरा०—अच्छा तब?

साधु—दूसरे दिन उनमेंसे एक, थालीके सामने बैठकर, मुहमें ग्रास देनेको ही थी कि उसने वायुवेगसे प्रवेश कर, थाली उठाकर फेंक दी। चारो ओर तहलका मच गया।

घोरा०—यह शनिश्चर उसके सिरपर क्यों सवार हुआ?

साधु–आप वेशसे नहीं स्वभावसे भी साधु हैं। यह कूटनीति क्या जानें!

घोरा०–यह अहमकपना है या कूटनीति?

साधु–सुनिये, सुनिये। जब लोग लगे पूछने, उसने झट एक कौआ दिखा दिया जो थालीका अन्न खाते उलट गया था।

घोरा०–अभी भी भारतमें ऐसे साधु हैं–अन्न देखते ही उन्होने जान लिया कि उसमें विष प्रयोग किया गया है! यह भारत है! भारत! फिर?

साधु–फिर क्या था? ऐसी मांग हुई उसकी चरण-रजकी कि बेचारेके पैरोके छाले छिल गये। पहलेसे जानता तो अवश्य चरणोंसे रजकी एक पोटली बांध लेता।

घोरा०–मगर काम भी उसने वैसा ही किया था। उसके बाद?

साधु–उसके बाद छोटी मालकिन चेली बननेके लिये पागल हो उठीं। उसने एक न सुनी, पैसातक न छुआ।

घोरा०–ऐसा अवसर पाकर! मगर है यह बात सौ मुखसे प्रशंसा करने योग्य।

साधु–बस वह सीधा गुरुके पास चला आया और मालकिनकी सेवा स्वीकार करानेके लिये अर्ज करने लगा। बूढे महाराज इतने प्रसन्न हुए कि उन्होने उसी वक्त अपने बाद महतीका वचन दे दिया।

घोरा०–देख भूमानन्द! देख! एक तू है और एक वह।

गुरुका गौरव बढानेवाले अब शिष्य कहा? मालकिनने दिया क्या सो तो कहा ही नहीं।

साधु–उनका जहां जो कुछ है सब गुरुका ही है। आप तो विधवा है और कोई है नहीं। काशीवाला मकान तो दे ही चुकीं।

घोरा०–(ठडी आह भरकर) सब भाग्यकी बात है–

रज०–जरा पूछो तो उस महात्माका नाम क्या है?

साधु–(अपनी धुनमें) मै सोचने लगा–दिलका ऐसा काला आदमी क्या ऐसी उच्च कोटिका पुरुष हो सकता है? जी नहीं माना। मालकिनके घर जा धमका। वहाके रसोइयेसे, जो इस षड्यंत्रका मुखिया था, सब दास्तान सुनी तो कहा भानुदास!

घोरा०–(चिल्लाकर) भानुदास! क्या कहा भानुदास!

रज०–वही भानुदास जो प्रमोद था?

साधु–(भौचक होकर) झोकमें आकर मैंने किसके आगे पेटकी बातें खोल दीं। (घोरानदसे) आप लोग उसे जानते है?

घोरा०–(कुछ देरतक सिर पकडकर बैठे रहनेके बाद) प्रमोद, तेरे लिये मै राहका भिखारी बन गया और तू राजसिंहासनपर बैठेगा?

साधु–आप लोग इसका कुछ तो भेद बताइये?

घोरा०–प्रमोद मेरा बालमित्र है। यह एक विधवा है जिसका सर्वनाश कर वह भागा है और हम लोग उसीकी खोजमें–ऊह!

साधु–(उछलकर) सच कहते हैं सच? देखें, अब वह कैसे महंत बनता है? कैसे मेरा हक मारता है?

घोरा०–आपका हक?

साधु–हां, मैं बडा शिष्य हूं। मेरा नाम है उत्तमदास।

घोरा०–इतने बड़े षड्यंत्रकारीकी तो हत्या करनेमें भी पाप नहीं है?

साधु–(एक हाथ बढाते हुए) तो मिलाइये हाथ और चलिये मेरे साथ। भगवान्‌की यही इच्छा है, अन्यथा अनायास वे आप लोगोंसे क्यों मिलाते?

(रजनी चौंक पडती है, पर अपने मनका भाव किसीपर प्रकट होने नहीं देती।)

साधु–आइये–आइये।

(सबका प्रस्थान)

पांचवां अंक

पहला दृश्य

स्थान—उद्यान

(सत्यव्रत ध्यानस्थ होकर बैठा है। ज्ञानदेव उसके मुखपर बिखरे बालोको सम्हाल रहा है।)

ज्ञान०—सत्यव्रत ! अब तो आखें खोलो। देखो, रजनीका काला पर्दा फाड़कर भुवन-भास्कर गगन-मंडलके राजसिंहासनपर आरूढ हो गये। पृथ्वीपर उनका एकछत्र राज्य स्थापित करनेके लिये अगणित अरुण किरणें उतर पड़ीं। प्रकाशका सागर उमड़ने लगा—अब तो आंखें खोलो—चिदाकाशके रंगमचपर तुम क्या-क्या खेल देख रहे हो, कुछ तो बोलो। (उसके शरीरको धीरे-धीरे हिलाता है।)

सत्य०—(अर्द्ध-समाहित अवस्थामें) ऊपर उठते-उठते . . .सब सीमाओको पार कर. . . .मेरी चेतना . . . एक अत्यत विशाल प्रकाश-मडलमें जा पहुंची (चेतना फिर ऊर्ध्वकी ओर चली जाती है। कुछ देर बाद) फिर उठी और उसे भी . . . उसे भी

अतिक्रम कर एक दूसरे प्रकाश-मंडलमें जा पहुची । ...ज्योंही उसकी प्रखर ज्योतिके साथ मेरी चेतना तदाकार... एकाकार होने लगी कि मैंने... मैंने नीचेसे एक पुकार सुनी–

ज्ञान०–यही तो–यही तो गुरुदेव हमेशा कहा करते हैं, भाप बनकर ऊपर उठो पर जगत्के हितके लिये बूंदें बनकर बरसो।

सत्य०–(थोडी देर बाद प्रकृतिस्थ होकर) जबसे मैंने ध्यानमें देखा है कि गुरुदेव मेरे भालपर विजय-तिलक लगा रहे हैं, तबसे आंखोके सामने पर्दे-पर-पर्दे खुलते चले जा रहे हैं। (ज्ञानदेवके गलेमे हाथ डालकर) ज्ञानदेव! ज्ञानदेव! यदि गुरुदेव मेरे क्षीण होते तेज, गिरते बल, टूटते साहसको न बचाते तो आज–आज मैं कहां होता? –नाचती उषा अपने आंचलमें फूल बटोरे (हृदय छूकर) इस व्योममें, निकलतीं कोपलें इस ठूठमें, कल्लोल करतीं समुद्रकी लहरे इस मरुभूमिकी तप्त छातीपर–(कृतज्ञतासे कठरोध, कुछ देर बाद)

गुरु मानव नहीं कल्पतरु है
जिसने उर दीपक दिया जला।
प्रकट करी पत्थरसे अग्नि,
तिनके जोड़ जलायी वह्नि,
जो था पथपर गिरि-शृंग अड़ा
बस दिया फूंकसे उसे उड़ा।

काठ बनाया सुरभित चन्दन,
उजड़ा कानन अभिनव नंदन,
पड़े कुसुम थे जो कुचले-से
छूकर ही उनको दिया जिला।
क्षणमें खोले युग-बंद द्वार
थे कसे पेंच जिनमें हजार,
जो नाला था भरा कीचसे
उसे मधुसिंधुसे दिया मिला।
लेकर मशाल सत्यकी हाथ
आये तुम हो क्या आज नाथ!
दुखिया भूका हरने चिर दुख—
जो हाय जन्मसे उसे मिला।

(पश्चात्तापकी अग्निसे दग्ध एक व्यक्ति प्रवेश करता है। दोनोको विभोर देख वह कुछ देर खडा रहता है, उसके बाद)

आगतुक—(सत्यव्रतसे) आप कौन है?

सत्य०—(सहसा) माताके चरणोमें चढाया हुआ एक फूल।

आग०—सुना, विजय बाबू इसी आश्रमको सुशोभित करते हैं। क्या आप बता सकेगे वह कहा है?

ज्ञान०—आप ही है विजय? कहिये, आप क्या चाहते हैं?

आग०—यही है? यही है (पैरोपर गिरना चाहता है, विजय पीछे हट जाता है।) घृणा न करे, मुझसे घृणा न करे। मैं जानता हूं, मुझसे बढ़कर नीच, घृणित इस जगत्में और कोई नहीं। अपने पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये ही मैं यहां आया हूं। (कमरसे छुरा निकालकर सामने रखते हुए) इसे ले और मेरी छातीमें घुसेड़ दें।

सत्य०—(आखे ऊपर कर) यदि मैं सबके आंसू, सबके दुःख अपने ऊपर ले सकता और विश्व-उनके भारसे मुक्त हो जाता!

ज्ञान०—(सत्यव्रतसे) इनसे पूछो तो इन्होंने किया क्या है।

आग०—विश्वासघात किया है! विश्वासघात!

ज्ञान०—किससे विश्वासघात किया है?

आग०—उससे—उस देवीसे जिसने विश्वसनीय—अति विश्वसनीय जानकर मुझे अपनी स्टेटका मैनेजर बनाया था और उसीके—उसीके पुत्रकी हत्या—

ज्ञान०—हत्या!

आग०—हां, हत्या करनेके भीषण षड्यंत्रमें शामिल हुआ। लखपति बननेकी आशामें—झूठी आशामें उनके रुपये ले-लेकर कारोबारमें लगाता गया, लगाता गया। मेरी नीयत बद नही थी, सच कहता हूं बद नहीं थी; यदि मंदीकी बाढ न आती तो भवेश कभी—

सत्य०—भवेश! वही भवेश जिसकी—

भवेश—हां, वही—वही भवेश जिसकी आपने जान बचायी थी,

रुपये देकर आदमी बनाया था, वही भवेश–(सिर नीचा कर) धरती, तू फट जा, मैं समा जाऊं। लज्जासे और–(सत्यव्रतकी ओर देखकर) यह क्या? आप चुप हैं–ऐसे बेईमान, ऐसे विश्वासघातीको सामने देखकर भी आप चुप हैं–वैसे ही शांत हैं– यह, यह तो देवता भी नहीं कर सकते! देख! भवेश, देख! मानव-तन धरकर धरापर ये आये और तू भी आया। मनुष्यसे ये बन गये देवता और तू–तू बन गया पिशाच! ना, मैं इस पैशाचिक शरीरको नहीं रखूंगा, आपके सामने ही मरूंगा। (छुरी उठाना चाहता है, सत्यव्रत उसे खींचकर हृदयसे लगा लेता है। स्पर्श पाते ही भवेशकी बाह्य चेतना लुप्त हो जाती है और वह मा, मा कहकर नाचने लगता है।)

(पट-परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

स्थान–अंजलिका घर।

सामनेसे उसके घरका भग्न भाग दिखायी देता है।

(अंजलि और दामोदरकी धर्मपत्नी)

अं०–भाजी! कभी-कभी जी करता है, इतना रोऊं कि अपने आंसुओंसे पृथ्वीको डुबा दूं।

दा० पत्नी–रोओगी? हंसो बेटी, हंसो! तुम्हें दुःख कैसा? तुम्हारी पीठपर उसका हाथ जो है।

अं०-तुम चाहे जो कहो माजी-उसका हाथ न रहता तो ऐसी-ऐसी चट्टानोंसे टकराकर यह शरीर क्या टिका रह सकता? सच कहती हूं माजी, जब उसे अपना दुःख सुनाती हूं, कलेजा निकालकर सामने रख देती हूं, आधा जी हलका हो जाता है; प्रत्यक्ष मालूम होने लगता है, कोई घावपर मरहम-पट्टी लगानेवाला आकर खड़ा हो गया है।

दा० पत्नी-सुन तो चुकी बेटी, और कितना सुनाओगी; यह उसीके भरोसेका तो पुण्यफल है कि राम जैसे पतिका वनवास हुआ, धन लुटा, जमीन-जायदाद स्वाहा हुई-और कितना गुण गाओगी?

अं०-भगवान्‌को दोष क्यो दूं? सब अपने कर्मका भोग है। सुख बदा होता तो वे क्यो जाते, पिता सब कुछ अक्षयको दे जाना चाहते थे, हठात् वे ही क्यों चल बसते?

दा० पत्नी-भाग, भाग क्यो करती हो बेटी! छुरीसे गला काटोगी तो कटेगा या नहीं? आगमें हाथ घुसेड़ोगी तो जलेगा या नहीं?

अं०-यह मैं मानती हूं कि भामाको अपने घरमें न रखती तो मुनीमजीके लड़केको कोई घरका भेदिया न मिलता और मैं सब तरहसे चौपट न होती; पर मैं क्या जानती थी कि जिसे सगी बहनकी तरह रखा वह घर लुटवा देगी, अक्षयकी जान लेने जैसे भीषण षड्यंत्रमें भवेशका साथ देगी?

दा० पत्नी-यदि वह अपना कौशल न दिखाती तो उसके तन-

पर आज सोना कैसे चमकता? मैं पूछती हूं, और कबतक उसके नामकी रट लगाये रहोगी?

अं०—जबतक दममें दम है। अब मेरे लिये सुख इसीमें है कि जिस रास्तेपर वे हैं उसमें उनका अंततक साथ दूं।

दा० पत्नी—तो ऊंह क्यों करती हो? कोडे खाती जाओ और भगवान् भगवान् करती जाओ। उनकी रट तो छूटी, अब देखें तुम्हारी लत कब छूटती है। वे आ रहे हैं, मैं जाती हूं।

(प्रस्थान)

(दामोदर पंडितका बडबडाते हुए प्रवेश)

दामो०—जगत्के कानोंमें निनाद करनेवाली 'नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गति तात गच्छति। ....अनन्याश्चिन्तयन्त' आदि अमर घोषणाएं क्या तत्त्वहीन हो गयीं? क्या भगवान्का नाम पृथ्वीसे उठ गया! पाप पुण्यको खा गया! सब सद्गुण, छल-कपटके भयसे लुप्त हो गये! विश्वासका यह फल! परोपकारका यह बदला! भवेश! दगाबाज!! कपटी!!! (अंजलिसे) इतनेपर भी तू स्थिर है?

अं०—सब कुछ घटा है, यही एक चीज बढी है पंडितजी!

दामो०—क्या बढी है बेटी?

अं०—दु:खके तीरको सहन करनेकी शक्ति।

दामो०—ना-ना। फेंक दे—हृदयसे सब सद्गुण निकालकर फेंक दे।

(रामाका प्रवेश)

रामा—राजा बेनीप्रसाद आये हैं।

अं०—राजा बेनीप्रसाद! मेरे घर!!

दामो०—कह दे चले जायं। लूटनेके लिये अब यहां कुछ नहीं रहा, आजका मनुष्य बाहरसे देवता, भीतरसे राक्षस है। मित्र बनकर चुपकेसे छुरी फेरनेवाला है।

अं०—नहीं पंडितजी, इससे उनके नाममें धब्बा लगेगा। जाऊँ, देखूं।

(प्रस्थान और राजा साहबके साथ पुन प्रवेश)

राजा सा०—भगवान्‌की आज्ञासे मैं आप लोगोके पास उपस्थित हुआ हूं। (अजलिसे) क्या मै एक बार आपके सुपुत्रको देख सकता हूं? (रामा स्वत अक्षयको बुलाने चला जाता है।) स्वप्नमें मुझे भगवान्‌का आदेश मिला है कि मै विजयकुमारके पुत्रके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दूं और राज्यभार उसे सौंपकर निश्चिन्त हो जाऊं।

(युवक अक्षयका प्रवेश)

(अक्षयको पास खीचकर सस्नेह सिरपर हाथ फेरते हुए)

आज यदि भगवान् तुम्हे राजा बना दें तो तुम किस तरह राज्य करोगे?

अक्ष०—मैं ऐसी चेष्टा करूंगा कि मेरे राज्यमें कोई दीन-दुःखी न रहे।

राजा सा०—किन्तु क्या यह संभव है? सबका दुःख मिटा देने-की सामर्थ्य किसमें है?

अक्ष०—भगवान्‌में।

राजा सा०—पर यह तो भगवान् भी आजतक नहीं कर सके।

अक्ष०—जो वे नहीं कर सकते, मां कहती है, उनके चरणोका दास उनकी कृपासे कर सकता है।

राजा सा०—(विमुग्ध होकर उसे हृदयसे लगाते हुए) बेटा! आजसे मेरा राज्य तुम्हारा है। आओ देवी, आइये पंडित जी, चलो बेटा।

(सब चले जाते है, अजलि ठहर जाती है।)

अ०—(घुटने टेककर गद्गद स्वरमें) बहुत देर बाद सुध ली प्रभो! बस एक इच्छा और पूरी करो। मेरे पतिका जीवन महान् हो, जिस पथपर वे चले है, जिस तपस्यामें लगे है वह सफल हो!

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्थान—भानुदासके गुरुका देवमंदिर

(मखमलकी गद्दीवाली एक कामदार चौकीपर बाबा भानुदास मसनदके सहारे बैठे पान चबा रहे है। एक तरफ चादीकी डिबियामें पान और सुरती रखी है, दूसरी तरफ पीकदान। पीछे खडा एक सेवक चवर डुला रहा है। सामने उनका शिष्य चरणदास बैठा है। वे उससे मचल-मचलकर बाते कर रहे है।)

भानु०—उत्तमदास जान बचाकर भागा था; क्या वह फिर लौट आया है?

चरण०—हां सरकार। और सबने सरकारकी प्रभुता स्वीकार

कर ली, मगर उसका सिर अभीतक नहीं झुका।

भानु०-तो अब उसका सिर धड़से जुदा होकर ही रहेगा। वह नहीं जानता, उसपर कृपा करके ही मै अबतक चुप रहा। बुलाओ खड़गबहादुरको; देखता हू मैं उसकी ऐंठ।

(हाथ जोड एक किसानका प्रवेश)

किसा०-दुहाय बाबा। सब नशि गेलऊ। यहो दू विघा जमीन चलऊ जाय तो बाल-बच्चा मरी जैतै।

भानु०-किसने इसे यहा आने दिया? ले जाओ चरणदास, इसे मुखियाजीके पास।

किसा०-गरीबपर दाया करो बाबा। दूई बच्छरसे मारा पड़ै छ। अन्नऊ बिगर बुगियारी माय मरी गेली। हई शाल बकाया. जैसे होय देबो बाबा।

(घुटने टेककर मिन्नत करता है।)

(मुखियाजीका हाफते हुए प्रवेश)

मुखिया-सरकार! सरकार! राय बहादुर देवीप्रसाद आये हैं।

भानु०-कौन देवीप्रसाद, जिनका लाल बाजार है? (किसानकी ओर ताककर) मुखियाजी, ले जाओ इसे। बेकार बकबक कर रहा है।

(मुखियाजी किसानका हाथ पकडकर खीचते है, किसान 'बाबा, बाबा' कहकर फरियाद करता है। वे उसे घसीटते हुए ले जाते है। दूसरी तरफसे राय बहादुर अपनी विधवा कन्याके साथ आते है और दोनो भानुदासके चरण छूकर प्रणाम करते हैं।)

भानु०-सब कुशल तो है देवी बाबू?

राय वहा०—श्रीचरणोकी कृपासे सब कुशल हैं। जीवनकी संध्या आ गयी बाबा, कुछ कर नहीं पाया।

भानु०—नर-तन पाकर जो कर लिया सो कर लिया। परंतु आज-कलकी नयी रोशनीवाले लोग धर्मको, भगवान्‌को ताकपर धर देनेमें ही अपनी भलाई समझते है।

राय वहा०—अपनी भलाईकी बात मनुष्य सोचे कब? संसार-के हथौडेकी चोटसे ही वेचारा वेदम रहता है—करे क्या?

भानु०—दुखमें जैसे वह भगवान्‌को पकड़ने दौड़ता है वैसे सुख-में भी पकडे रहे।

राय वहा०—पकडे रहे कैसे—वह पकडाई देता कहां है?

भानु०—(मुसकराकर) मै तुमसे पूछता हू, जवतक तुम्हारी मुट्ठी वद है तवतक उससे कुछ पकड सकते हो?

राय वहा०—नहीं।

भानु०—तो कहो, इसमें दोष किसका? मुट्ठी खोलो और तव पकड़ने दौडो। फिर देखो वह पकड़ाई देता है या नहीं।

राय वहा०—(खुश होकर) आज मै ऐसा ही कुछ मनोरथ लेकर हाजिर हुआ हू। श्रीमुखारविंदसे मनकी बात सुनकर वड़ी प्रसन्नता हुई।

भानु०—(पार्श्व वदलकर) यह श्रीविहारीजीका दरवार है। यहां जो जिस मनोरथसे आता है वह स्वत· पूरा होता है।

राय वहा०—तो क्या मै अपना मनोरथ पूरा हुआ समझू?

भानु०—क्या?

राय बहा०—सरकार त्रिकालदर्शी है—आपसे छिपा क्या है? मेरे बाद इस लड़कीकी क्या दशा होगी मैं इसी सोचसे मरा जाता हूं। किसी तरह इसका मन भगवान्में लगे, यही मेरी इच्छा है।

भानु०—यह बड़ी शुभेच्छा है।

राय बहा०—क्या ऐसा प्रबंध हो सकता है कि ठाकुरजीको नित्य मेरी ओरसे भोग लगे और कोई अभ्यागत मेरे गुरुद्वारेसे विना प्रसाद पाये न लौटे?

भानु०—(मुखमे पान रखते हुए) और यहा काम ही क्या है?

राय बहा०—५० हजारके बौंड और २०० बीघे जमीनका संकल्प लेकर मैं घरसे निकला हूं; सरकारकी हामी भरनेकी देर है।

भानु०—(हर्षसे चेहरा दमक उठता है पर मनके भावको दबा-कर, मुखमें सुरती रखते हुए) बिहारीजी तुम्हें दीर्घायु करे।

राय बहा०—तो इसी रामनवमीपर दीक्षा देनेकी कृपा हो।

भानु०—यह क्या देवी बाबू, तुम तो जातिके कलवार हो—ना, सो कैसे होगा?

चरण०—सरकार—

भानु०—तुम्हारी क्या बुद्धि मारी गयी है चरणदास? मैं क्या बिहारीजीका नाम डुबोने यहां बैठा हू? वह देखो, बूढे महाराज प्रकट होकर क्या कह रहे हैं—

(पीकदानी उठानके लिये हाथ बढाते है। देवी बाबू झट उसे उठाते है और बाबा उसमें पीक फेकते है।)

तुममें श्रद्धा-भक्ति तो है देवी बाबू, पर मैं विवश हूं।

राय बहा०—(हाथ जोडकर) आप जैसी दिव्य विभूति हमारा उद्धार न करेंगी तो आप ही कहिये, हम लोगोका उबार कैसे होगा? मेरी ओर नहीं, इसकी ओर आखें उठाकर देखें। मेरे पीछे इसकी क्या दशा होगी?

भानु०—तुमने विकट समस्या उपस्थित कर दी।

चरण०—सरकार, बिहारीजीके मदिरका जीर्णोद्धार कराना आवश्यक हो गया है।

राय बहा०—उसका भार मैं लेता हू।

भानु०—बदलेमें अपने जीर्णोद्धारका भार मुझपर लादते हो? जानते हो गुरुको शिष्यके पापोका भागी होना होता है?

राय बहा०—इसीलिये तो सरकार इस सिंहासनको सुशोभित करते हैं।

भानु०—(मुखमे पुन पान रखते हुए) अच्छा, जैसी बिहारी जीकी मरजी।

(रायबहादुर चरण-रज सिर आखोपर लगाते है। अपनी कन्याको उसके मनकी बात पूछनेके लिये वही छोडकर ठाकुरजी-के दर्शन करने जाते है।)

विधवा—मेरी इच्छा है कि मैं ठाकुरजीके लिये एक मंदिर बनवाऊ और उसकी सेवामें जीवन उत्सर्ग कर दूं। आपको उसकी महती स्वीकार करनी होगी।

भानु०— (कधेपर हाथ रखकर) तुम्हारी इच्छा मैं कैसे टाल सकता हू?

विधवा–कल सरकारकी सवारी हमारा गृह पवित्र करे जिससे घरके लोग दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हों।

(चरणोपर सिर रखती है, बाबा सस्नेह उसे उठाते है।)

(उठकर) कल ठीक पांच बजे मै मोटर भजूगी।

(प्रस्थान)

भानु०–चरणदास! देखो तो गगनमें वही दिनकर उठा है जो नित्य उगता है? यह वही दुनिया है जो पहले थी? इतना सुख! इतनी आसानीसे! आह! पहले क्यो न जाना!

(हाथमे छुरा लिये एक स्त्रीका प्रवेश)

स्त्री–बता लम्पट, बता! वह स्त्री कौन थी जो अभी यहांसे निकली? सोचा था, तुझे न मारूंगी–उसे मारूंगी। पर नहीं, तू मर–और किसीका सर्वनाश करनेके लिये तुझे नहीं छोड़ूंगी।

(आगे बढती है।)

भानु०–(चिल्लाकर) कौन? रजनी! (हाथ पकडकर) तुम यहा! मेरा सिर चाहती हो? लो, यह शरीर तुम्हारा है।

(आखें चार होती है। रजनीके हाथसे छुरा गिर पडता है।)

मै सोच रहा था, इस सुखम तुम कहां! चरणदास!

(आखोसे इशारा करते है।)

रजनी–(जाते-जाते) गोवर्धनसे सावधान!

(चरणदास रजनीको अत.पुरमे ले जाता है।)

भा०–खड्गबहादुर!

(खड्गबहादुरका प्रवेश)

गोवर्धन और उत्तमदासका काम तमाम करना होगा। इसके लिये जितने आदमियों और रुपयोंकी आवश्यकता हो ले जाओ, पर काम फतह होना चाहिये। जाओ।

खड०—जो हुक्म।

(अभिवादन कर प्रस्थान)

भानु०—(सोचता है) यह क्या ठीक हुआ? गोवर्धनके कारण ही तो आज! ना ना,—लेकिन—इस तरह! बुलाऊ उसे (आगे बढकर) खड़गबहादुर! खड़गबहादुर! चला गया। जाने दो। मेरे विरुद्ध वह उतरा क्यो? भोगे अपने कियेका फल। मेरा कसूर क्या—

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—वशिष्ठ आश्रमके पास गंगातीर

(आधि-व्याधिसे ग्रस्त घोरानद उद्भ्रात अवस्थामें खडा है। सामने एक चिता धूधू कर जल रही है। दूरसे चिताकी लौ देखकर एक साधु आ जाते है।)

साधु—राम! राम! आपने ऐसा क्या किया है जो आत्महत्या करने जा रहे है?

घोरा०—छल किया है—छल।

साधु—किससे छल किया है?

घोरा०—अपने-आपसे, दुनियासे, भगवान्से

साधु—कौन कहता है आपने छल किया है—हम दिया खाते है रामका; राम इच्छासे हमें कोई, जो कुछ भी देता है स्वारथ-वश देता है, पुन कमानेकी आशासे देता है।

घोरा०—मेरे पास पुण्य है? मेरे पुण्यका टकसाल वह लूट ले गयी। मै लुट गया, मै लुट गया! आप पहले क्यो न आये? अब क्या? अब रहा क्या? रोना, केवल रोना।

(रोने लगता है।)

साधु—आप रोते है?

घोरा०—कहा? नहीं तो, (हसने लगता है) आप टिकट बाटते है?

साधु—कहाके?

घोरा०—मुक्तिके। मैंने हजारो बांटे है, हजारो। वह देखिये, वह देखिये, सबको यम रोके खड़ा है। एँ! एँ! उसकी इतनी मजाल! (डडा लेकर मारने दौडता है।)

साधु—रामइच्छासे आप क्या पागल हो गये?

(घोरानद साधुका मुह ताकने लगता है।)

साधु—राम जानें आप पागल क्यो हो गये?

घोरा०—सोचते सोचते।

साधु—क्या सोचते है?

घोरा०—सोचता हूं मरना ही था तो प्रमोदके हाथसे क्यो न मरा? और सोचता हूं, गोता मारा था मैंने अमृतके कुडमें, वह विषका कैसे हो गया? सीढ़ियां गढ़ रहा था मैं स्वर्गकी, नरकमें कैसे जा

गिरा? पंडितजी, कहा था न तुमने? कहा था न!—मत फांद।

(सिर धुनता है।)

साधु—रामइच्छासे बीती, ताहि विसारिये और राम भजिये।

घोरा०—रटा जायगा इस जिह्वासे राम अब? ऐंठ जायगी। ऐंठ जायगी वह! क्या जानें—आप क्या जानें मेरे भीतर क्या हो रहा है? मै पूछता हू, मेरे पास रजनी अभीतक क्यों आती है? वह देखिये, आयी, फिर आयी। भागिये, भागिये। खा जायगी।

(दौडते हुए प्रस्थान)

साधु—मालूम होता है, बेचारेके मरमपर किसीने गहरी चोट पहुंचायी है।

(घोरानदका पुन प्रवेश)

घोरा०—कहिये—आप ही कहिये, अनुतापकी आगमें इस तरह जलनेकी अपेक्षा क्या एक बार जल मरना अच्छा नहीं?

(आगमे कूदने जाता है।)

साधु—(हाथ उठाकर) है! है! क्या करते है? क्या करते है? शोक तज, राम भज। आत्महत्यासे बढकर पाप नहीं।

घोरा०—(हसकर) अब कही इस शरीरमें आत्मा है, जो उसकी हत्या होगी? दिखायी देती है आपको? अन्धे है, अन्धे। जाइये यहासे। नहीं तो, नहीं तो (मारने दौडता है।)

(साधु 'भावी प्रवल' कहते हुए चले जाते है।)

हत्या! मुर्दे शरीरकी हत्या होती है? इस शरीरमें आत्मा है?

है? —मैं जीता हूं? मरा नहीं—अभीतक मरा नहीं! अपनी आत्माकी हत्या क्या मैंने उसी दिन नहीं कर ली जिस दिन उसकी छाया छुई। इस पापी शरीरको भगवान्में सुख नहीं मिला, सुख खोजनेके लिये यह नरकमें कूदा। (शरीर खुजलाता है, घावसे पीव निकलती है, हृदय क्षोभ और ग्लानिसे भर जाता है।) इच्छा होती है, इस शरीरकी सौ वार हत्या करूं; जल-जलकर सौ बार जी उठू और सौ बार इसे आगमें भूनू। इसे सुख चाहिये, सुख। पापी! चल तुझे सुख दू— (आगमे कूद पडता है।)

पांचवां दृश्य

स्थान—आश्रमके समीप सरोवर-तट

(सत्यव्रत मूर्तिकी तरह निश्चल होकर बैठा है। आकाशमे शांति, समता, धृति, निष्ठा आदि प्रवेश कर गाती है।)

चल चल सखी उस बाग, न जहां तुषार है।
आंखें थकीं निहार मिला तब आधार है॥
है प्रेमकी खिली जहां मधु-सी बहार है।
मिल साथ श्रद्धा भक्ति के गाती मलार है॥
बहती जहां शुचि त्यागकी, दक्षिण बयार है।
अलि हो-समर्पित फूलपर, करता गुंजार है॥

जल भस्म हुई वासना, कोई न शोर है।
उस खाकपर अब नाच रहा, ज्ञान मोर है॥
सब सद्गुणोंका बज रहा, जहां सितार है।
रग-रगसे हो रही अहा! मां मां पुकार है॥

(सत्यव्रतके अदर समस्त देवोचित तत्त्व मुक्त होते है। सर्वत्र चैतन्य जाग उठता है, इद्रियोंसे शातिकी शीतल छटा छिटकने लगती है, मुक्त पुरुष के सब लक्षण देहपर देदीप्यमान होने लगते है।) (आकाशमे इद्र, वरुण आदि देवताओका प्रवेश)

इन्द्र—जगत्के प्रथम प्रभातसे जो दु:खान्त नाटक शुरू हुआ था उसका अन्त होनेका समय आ गया—अब वह समय आया है जब यहा सुखान्त नाटकका समारम्भ होगा। कठिन प्रयासके बाद एक आधारका निर्माण हो सका है; इसे अधिकृत कर मै पृथ्वीपर अनेक नवीन युगोकी ध्वजाए फहराऊंगा।

वरुण—इसने अपनी इच्छाओको जीता है, अत: यह मेरे हाथका विश्वस्त यंत्र बननेमें समर्थ है। मै इसे यत्र बनाकर विश्वको आत्माकी एकताके विशाल सूत्रमें बाधनेका प्रयास करूगा।

मित्र—मैं इसे केंद्र बनाकर विश्वके सामने नवीन आदर्श, सुख-शान्तिका नवीन स्वर्ग, सत्यका नवीन प्रकाश उपस्थित करूंगा—जिससे मनुष्य जडतासे चैतन्यकी ओर, देहसे आत्माकी ओर, मृग-मरीचिकाके स्वर्गसे वास्तविक स्वर्गकी ओर अग्रसर हो।

(सहसा पर्दा फटता है।)

(सरोवरके मध्य एक विशाल अरुण सहस्रदलपर जगदीश्वरी अपने पूर्ण वैभवके साथ प्रकट होती है। सारा स्टेज दिव्यालोकसे उद्भासित हो उठता है। नभोमडलसे नाना प्रकारकी अलौकिक शक्तिया उतरकर सत्यव्रतके अदर प्रवेश करती है। उसके शरीरका रोम-रोम चक्षु बनकर माताके दर्शनामृतका पान करता है।)

जगदीश्वरी—वत्स! मेरी आज्ञासे तुम सूर्यकी तरह दीप्तिमान होकर विश्वमें अपना प्रकाश फैलाओ। जगत्के लाखो अजले दीपोको अपने आंतरिक आलोकसे जलाओ। तुम्हारी बुद्धि इन्द्र-की तरह सहस्र-चक्षु हो, आंखोमें बृहस्पति और कंठमें सरस्वती विराजमान हो। और तुम्हारी जीवन-वीणा मेरे सगीतके साथ स्वरमें स्वर मिलाकर विश्वको अनन्तका सगीत सुनावे। पुत्र! जो अमृत पाया है उसे जगत्को पिलाओ।

(आकाशसे पुष्पवृष्टि होती है। नेपथ्यमे देवऋषिगण प्रकट होकर आशीर्वाद देते है। देवीका अतर्द्धान)

सत्य०—(आखें बद किये) **मै कहां हूं—यहां क्या सदा अमृत-वर्षा होती है! मै यह विश्व हूं....या....यह विश्व.... 'मै' है!** (कुछ क्षण चुप रहकर) **ज्योतिका सागर उमडता चला आ रहा है।** (आखे खोलकर) **जगत् क्या नन्दन कानन हो गया... सब वृक्ष कल्पतरु हो गये....सर्वत्र आनन्दके फूल खिले है....सब कुछ....मधुमय....मधुमय....**(मुदती आखोको चेष्टापूर्वक खोलकर) **यह क्या वही दुखिया पृथ्वी है....जिसपर स्वर्ग-लोक....न्योछावर होनेको......लालायित है।** (समाधिस्थ)

परिशिष्ट

(१)

तुम तो चले हो युद्धमें–

(Rendered by Dilip Kumar Roy)

March to the battle-front and wrest a noble victory here and now,
In loyalty to God's own call with soul's irrevocable vow
"For the Truth Supreme I count no cost and for His heights my life I stake
To Immortality through shipwreck and all for His Grace's sake"

When thou hast flung the gauntlet down to phalanxed hordes of inky hate,
Be thou a warrior for Love, behold, the hour is big with fate!
How shall he fight for the Lord of lustre whose heart is still the serf of sleep,
With desires unburnt to ash how will he scale ascents so pure and steep?

Crusader! on the Way to Light thy fires awake and forge ahead
To the open, proud and panoplied with courage meet thy foemen dread.

If fain thou be of real laurels thou must to the King of kings belong,
And, helmeted with His authority, declare thy pledge and song
"Let darkness swamp, abysses yawn, let mountains crumble, lightnings flash,
"Let deluge drown, flame-tongues outleap, black hell upsurge,
blue heavens crash,
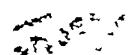
I still must onward, undismayed, from the Goal of goals I cannot turn,
Farewell to black Night o'erpassed 'tis for His young Sun of gold I yearn,
Untrembling like the Everest, affianced to the hoary Faith,
That God on high must move in those who move for Him through life
and death."

rusader! on the Way to Light thy fires awake and forge ahead
'o the open, proud and panoplied with courage, meet thy foemen dread.

(२)

मै तेरा मा मै तेरा–

(Rendered by Dilip Kumar Roy)

Each tone of my voice now only sings of thee,
And every breath ushers the zephyrs in,
Each drop of blood cries out in ecstasy
"O Mother, I am irrevocably thine"

My life's deep drum to thy footfall beats time,
My soul's harp thrills in thy delight divine,
And my melodies reveal in love's own rhyme
"O Mother, I am irrevocably thine"

From frost to springtide of my heart, O Grace,
In summer or rains from dawn till sun's decline,
My dream-land's cuckoo trills in blessedness
"O Mother, I am irrevocably thine."

To thee I appeal in thy compassion's name.
My last shell burn with thy light hyaline,
Till thy spark, redeemed, may regnantly proclaim
"O Mother, I am irrevocably thine"